[illegible]

जैन-बाल-बोधक

दूसरा भाग

लेखक
पं० [illegible]
[illegible]

जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय
[illegible]

विषय-सूची

पाठ-संख्या	विषय	पृष्ठ
	श्री मंगलाचरण	१
१	सम्यग्दर्शन	२
२	अविनयी बालक	३
३	देव-स्तुति (बुधजन)	५
४	दर्शन-पूजा-आरती-विनय	६
५	देव-स्तुति (दौलतराम)	७
६	उदारता (कहानी)	१०
७	जिनवाणी-स्तुति (सार्थ)	१२
८	नीरोगता (स्वास्थ्य)	१४
९	श्रावकके बारह व्रत	१६
१०	लकड़हारा (कहानी)	१७
११	गुरु-स्तुति (भूधरदास)	१८
१२	जीव और अजीव	२०
१३	मनसुख और धनसुख	२३
१४	अहिंसा-अणुव्रत	२५
१५	बारह भावना (भूधरदास)	२७
१६	सत्यवादी बालक	२९
१७	सत्य-अणुव्रत	३२
१८	सत्यवादी चोर (कहानी)	३३
१९	सत्यकी महिमा	३४
२०	आहार या भोजन	३४
२१	[illegible] (कहानी)	३६
२२	[illegible]	३८
२३	[illegible]	३९
२४	रूपचन्द (कहानी)	४१
२५	पानी (जीव-रक्षा)	४३
२६	जलके कीटाणुओंसे बचो	४४
२७	नीतिके दोहे	४५
२८	रात्रि-भोजन (कहानी)	४६
२९	मेढ़क और बैल („)	४८
३०	अजीव-द्रव्यके भेद	४९
३१	उपकारका बदला : प्रत्युपकार	५३
३२	दस नियम	५५
३३	नीतिके दोहे	५६
३४	परिश्रम	५७
३५	आठ कर्म	५८
३६	समय-विभाजन	६२
३७	सत्संगति (कहानी)	६३
३८	सत्संगति-प्रशंसा (दोहे)	६७
३९	चार गतियाँ	६८
४०	अभिषेक-पाठ (मंगल)	७०
४१	सेठके पाँच पुत्र (कहानी)	७५
४२	कौन, क्या और क्यों ?	७६
४३	जीवकी नौ पहचान और दस प्राण	८०
४४	'त्रस' और 'स्थावर' जीव	८५
४५	कषाय और प्रमाद	८७

श्री परमात्मने नमः

जैन-बाल-बोधक

दूसरा भाग

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

पहला पाठ

सम्यग्दर्शन

शिष्य—गुरुजी, सम्यग्दर्शनका क्या स्वरूप है ?

गुरु—सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे शास्त्रके श्रद्धान अर्थात् श्रद्धापूर्वक विश्वास करनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं।

शिष्य—परन्तु गुरुजी, उस दिन शास्त्र-सभामें तो पंडितजीने कहा था कि जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। तो गुरुजी, सम्यग्दर्शन क्या दो प्रकारका होता है ?

गुरु—तुम उस समय पंडितजीसे पूछते, तो वे बता देते। वीर, अब समझ लो। वास्तवमें सत्यार्थ देव, गुरु और शास्त्रका श्रद्धान करना, और सात तत्त्वोंका श्रद्धान करना, एक ही बात है; क्योंकि देव, गुरु और शास्त्रके उपदेशमें ही सात तत्त्वोंका स्वरूप मालूम होता है। इसलिए एकका श्रद्धान करनेसे दूसरेका श्रद्धान अपने-आप हो जाता है।

शिष्य—गुरुजी, देव, गुरु और शास्त्रका श्रद्धान करनेसे सात तत्त्वोंका श्रद्धान कैसे अपने-आप हो जायगा ? और जो सात तत्त्वोंका श्रद्धान करेगा, उसको देव-गुरु-शास्त्रकी श्रद्धा कैसे अपने-आप हो जायगी ?

गुरु—अच्छा सुनो, शास्त्रोंमें ही सात तत्त्व बताये गये हैं। इसलिए जो शास्त्रमें श्रद्धान करेगा, उसे सात तत्त्वोंका ज्ञान हो जायगा। इस प्रकार जो सात तत्त्वोंका स्वरूप समझकर

पंडितजीके पड़ोसमें एक वैश्यका घर था। उसके घर अचानक ही एक दिन छप्पर गिर पड़ा। वह दौड़कर पंडितजीके घर गया, और उनसे कहने लगा—'मेरा छप्पर गिर गया है, आपके यहाँ कोई लकड़ीका खम्भा हो, तो कृपाकर दे दीजिये।' पंडितजीने अपने विद्यार्थियोंमें से रतनलालको उँगलीसे बताकर कहा—'तुम इस लड़केको ले जाओ। यह लड़का विनय-रहित लकड़के समान जड़ है, इसीको खम्भेकी जगह खड़ा करके इसके माथेपर छप्पर रख दो।' तब रतनलाल घबड़ाकर उस वैश्यसे बोला—'नहीं-नहीं, मुझे माफ करो। मुझसे छप्परका बोझ नहीं उठाया जायगा।' पंडितजीने कहा—'तुझे अवश्य ही खम्भा बननेके लिए जाना पड़ेगा, क्योंकि तू विनय-रहित खम्भा सरीखा है।' रतनलालने हाथ जोड़कर कहा—'मुझे हरगिज न भेजिये, मैं आजसे विनयी बनूंगा। आप मुझे बताइये कि विनय किसे कहते हैं और किन-किनकी विनय करनी चाहिए?' तब पंडितजीने कहा—'देव, गुरु (साधु), शास्त्र और मन्दिर ये सब पूजनीय हैं। इनको देखते ही हाथको जोड़ मस्तक नमाकर नमस्कार (प्रणाम) करना चाहिए। इसी प्रकार गुण, बुद्धि, उमर और सम्बन्ध आदिमें अध्यापक, पंडित, माता, पिता, चाचा, मामा, बड़े भाई आदि जो अपनेसे बड़े हैं, इन सबको भी हाथ जोड़कर प्रणाम करना चाहिए। इनकी जैसी आज्ञा हो, वैसा ही काम करना चाहिए। इनको पीठ देकर बैठना, इनका आदर-सत्कार न करना, कहना न मानना—ये सब अविनय है। अतएव आजसे हरगिज ऐसा

जय वीतराग-विज्ञान पूर, जय मोह-तिमिरको हरन-सूर;
जय ज्ञान अनन्तानन्त धार, दृग-सुख वीरज-मंडित अपार।
जय परमशान्त-मुद्रा-समेत, भविजनको निज अनुभूति-हेत;
भवि भागन-वश जोगे-वसाय, तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय।
तुम गुण चिन्तत निज-पर-विवेक, प्रगटैं, विघटैं आपद अनेक;
तुम जग-भूषण दूषण-वियुक्त, सब महिमा-युक्त विकल्प-मुक्त।
अविरुद्ध शुद्ध चेतन-स्वरूप, परमात्म परम-पावन अनूप;
शुभ-अशुभ-विभाव-अभाव कीन, स्वाभाविक परिणतिमय अछीन
अष्टादश-दोष-विमुक्त धीर, सुचतुष्टय-मय राजत गँभीर;
मुनि गणधरादि सेवत महन्त, नव-केवल-लब्धि रमाधरन्त।
तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये, जाहिं, जै हैं सदीव;
भव-सागरमें दुख-छार-वारि, तारनको और न आप टारि।
यह लखि निज-दुख-गद हरन-काज, तुम ही निमित्त-कारण इलाज
जाने, तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुख जो चिर लहाय।
मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप, अपनावे विधि-फल पुण्य-पाप;
निजको परको करता पिछान, परमें अनिष्टता इष्ट ठान।
[illegible] अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि;
[illegible] न अनुभयो स्वपद सार।

छठा पाठ

उदारता

हरएक बालकको अपने चित्तमें ओछापन और कृपणता (कंजूसी) न रखकर हमेशा उदारता (चित्तको बड़ा) रखना चाहिए; क्योंकि उदारताके समान दूसरा कोई उत्तम गुण नहीं है। इस दुनियामें जितने भी उदार पुरुष हो गये हैं, उन सबका यश (कीर्ति) अभी तक गाया जाता है।

जयपुरमें मानमल नामक एक सद्गृहस्थ था। उसके प्यारेलाल नामका आठ वर्षका एक सुशील लड़का था। प्यारेलाल अत्यन्त उदार-प्रकृतिका था। अपने उदार-भावके कारण उसे अपने महाविद्यालयकी तरफसे बहुत सम्मान और पुरस्कार मिला था। बचपनसे ही उसमें उत्तम-उत्तम गुण मौजूद थे, परन्तु उदारता-गुण सबसे अधिक था। किसीका भला होता हो, तो उस काममें वह हमेशा आगे होकर सहायता करता था। इतना ही नहीं, किन्तु किसी दूसरेकी भलाई करनेमें अपनी हानि हो, तो भी वह अपनी हानिकी कुछ भी परवाह न करके दूसरेकी भलाई करनेमें तत्पर रहता था।

एक दिन उसके पास उसके पिताके एक अति गरीब मित्र सहायताके लिए आये थे। उन्होंने और लोगोंसे प्यारेलालकी बहुत कुछ प्रशंसा सुन रखी थी। उसके साथ-साथ यह भी सुन रखा था कि प्यारेलालकी उदारता सचमुच सराहनीय है।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अपने लिए रख ली। यह देख अध्यापकजीने कहा—'प्यारेलाल, तुमने खराब पुस्तक क्यों रखी, तुम तो सबसे प्रथम रहते हो?' प्यारेलालने कहा—'दूसरेको खराब पुस्तक देकर अपने-आप अच्छी रखना अन्याय है, क्योंकि दूसरेको ऐसी खराब पुस्तक देनेसे उसके मनमें दुःख होगा, इसलिए खराब पुस्तक अपने-आप लेना ही उचित समझकर मैंने यह पुस्तक अपने लिए रखी है।' यह सुनकर अध्यापक महाशय बड़े प्रसन्न हुए। सब लड़कोंके सामने अध्यापकजीने प्यारेलालके इस उदार-भावकी बहुत प्रशंसा करके सबको प्यारेलालकी तरह उदारता-गुण धारण करनेकी प्रेरणा की। जब यह बात प्यारेलालके घर मेहमानने सुनी, तो उसने खुश होकर प्यारेलालकी बहुत प्रशंसा करके उसे पाँच पुस्तकें और इनाममें दीं।

सातवाँ पाठ

जिनवाणीकी स्तुति

मन्दिरमें देव-दर्शन करनेके बाद निम्नलिखित स्तुति पढ़कर शास्त्रजीकी वन्दना करनी चाहिए।

वीर-हिमाचलसे निकली, गुरु-गौतमके मुख-कुंड टली है;
मोह-महाचल भेद चली, जगकी जड़तातप दूर गली है।
ज्ञान-पयोनिधि माहिं रली, बहु भंग तरंगनिसों उछली है;
ता शुचि शारद-गंगनदी प्रति, मैं अंजुली करि शीस चली है।१

[illegible]

अपने लिए रख ली। यह देख अध्यापकजीने कहा—'प्यारेलाल, तुमने खराब पुस्तक क्यों रखी, तुम तो सबसे प्रथम रहते हो?' प्यारेलालने कहा—'दूसरेको खराब पुस्तक देकर अपने-आप अच्छी रखना अन्याय है, क्योंकि दूसरेको ऐसी खराब पुस्तक देनेसे उसके मनमें दुःख होगा, इसलिए खराब पुस्तक अपने-आप लेना ही उचित समझकर मैंने यह पुस्तक अपने लिए रखी है।' यह सुनकर अध्यापक महाशय बड़े प्रसन्न हुए। सब लड़कोंके सामने अध्यापकजीने प्यारेलालके इस उदार-भावकी बहुत प्रशंसा करके सबको प्यारेलालकी तरह उदारता-गुण धारण करनेकी प्रेरणा की। जब यह बात प्यारेलालके घर मेहमानने सुनी, तो उसने खुश होकर प्यारेलालकी बहुत प्रशंसा करके उसे पाँच पुस्तकें और इनाममें दीं।

सातवाँ पाठ

जिनवाणीकी स्तुति

मन्दिरमें देव-दर्शन करनेके बाद निम्न-लिखित स्तुति पढ़कर शास्त्रजीकी वन्दना करनी चाहिए।

वीर-हिमाचलतें निकसी, गुरु-गौतमके मुख-कुंड ढरी है;
मोह-महाचल भेद चली, जगकी जड़तातप दूर करी है।
ज्ञान-पयोनिधि माहिं रली, बहु भंग तरंगनिसों उछरी है;
ता सुचि शारद-गंगनदी प्रति, मैं अंजुली कर शीस धरी है॥

आठवाँ पाठ

नीरोगता

नीरोगता समस्त सुखोंकी जड़ है। नीरोगताके समान संसारमें सुखका साधन और कोई नहीं है; क्योंकि शरीर नीरोग रहनेसे ही मनुष्य संसारके समस्त सुखोंके लिए नाना प्रकारके उद्योग या उपाय कर सकता है। रोगी मनुष्य ऐसा दुःखी और उदास रहता है कि उसे लिखना-पढ़ना आदि किसी भी कामके करनेमें उत्साह नहीं होता। अतएव मनुष्यको रोगोंसे सदा दूर ही रहना चाहिए। इसके लिए हमें अपना खान-पान और रहन-सहन ऐसा रखना चाहिए, जिससे कोई भी रोग उत्पन्न न हो; क्योंकि खान-पान और रहन-सहनकी गलतियोंसे ही बीमारियाँ पैदा होती हैं। यदि मनुष्य अपना खान-पान और रहन-सहन ठीक रखे, तो कभी भी कोई बीमारी न हो। यहाँ कुछ ऐसे उपाय बताये जाते हैं, जिनके अनुसार चलनेसे मनुष्य जीवन-भर सब तरहके रोगोंसे बचकर नीरोग रह सकता है।

नीरोग रहनेके लिए पहले तो खान करनेकी बड़ी जरूरत है। खान करनेसे शरीरका मैल धुल जाता है और मैल रहनेके कारण शरीरसे जो दुर्गन्धि निकला करती है, वह बन्द हो जाती है। जो लोग नित्य खान करते हैं, उनका शरीर निर्मल और नीरोग रहता है। जो लोग कई-कई दिन तक खान नहीं करते, उनके शरीरसे दुर्गन्धि आने लगती है। उनका शरीर भूत नहीं

ઝાલણો કોઈ વખત ગળે ઝાલણ, વખત ઝાલણ, ઉપરાંત કે ઝાલણ
ઝાલણ કે.

દિવાસા ઝાલણમાં ઝાલણો ઝાલણ ઝાલણ (ઝાલણ) ઝાલણ ઝા
ઝાલણ કે. ઝાલણમાં ઝાલણમાં ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ. ઝાલણ ઝાલણ
ઝાલણ કે. ઝાલણ ઝાલણમાં ઝાલણ કે. ઝાલણમાં ઝાલણ ઝાલણ
ઝાલણો ઝાલણ ઝાલણ. ઝાલણમાં ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ
ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ, ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ, ઝાલણ
ઝાલણ ઝાલણ. ઝાલણમાં ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ, ઝાલણ
ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ. ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ
ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ
ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ
ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ
ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ
ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ
ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ
ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ
ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ
ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ
ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ
ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ ઝાલણ

तीसरी बार देवने पानीमें डुबकी लगाकर लोहेकी असली कुल्हाड़ी लाकर कहा—"यह तुम्हारी कुल्हाड़ी है?" इस बार लकड़हारेने प्रसन्न होकर कहा—"हाँ, यही मेरी कुल्हाड़ी है।" इस प्रकार उस लकड़हारेकी निर्लोभता और सचाईको देखकर वह देव बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसे उसकी अपनी कुल्हाड़ीके सिवा सोने और चाँदीकी कुल्हाड़ियाँ भी उपहारमें दे दीं।

लोभ करना बड़ा पाप है। शास्त्रोंमें लोभको पापका बाप कहा गया है, क्योंकि लोभ ही सब पापोंका जनक है। लकड़हारेने सोने और चाँदीकी कुल्हाड़ीका लोभ नहीं किया, तभी उसे सोने और चाँदीकी कुल्हाड़ियाँ मुफ्त मिल गईं। यदि वह लकड़हारा लोभमें आकर सोनेकी कुल्हाड़ीको अपनी कुल्हाड़ी कह देता, तो वह देव उसे झूठा समझकर उलटा दंड देता, और उसे अपनी कुल्हाड़ी भी वापस न मिलती। इसलिए लोभ न करके न्याय और सचाईसे जो कुछ मिले, उसीमें सन्तुष्ट रहना चाहिए।

ग्यारहवाँ पाठ

गुरु-स्तुति

वंदौं दिगंबर गुरु-चरन, जग तरन-तारन जान;
जे भरम-भारी-रोगको, हैं गरुड़वेद महान।
जिनके अनुग्रह बिन कभी, नहिं कटे करम-जंजीर;
ते साधु मेरे उर बसहु, मेरी हरहु पातक-पीर।१

जब शीत-मास तुषारसों, दाहे सकल वनराय;
जब जमे पानी पोखराँ, थरहरे सबकी काय।
तब नगन निवसें चौहटें, अथवा नदीके तीर;
ते साधु मेरे उर बसो, मेरी हरहु पातक-पीर।७

कर जोर 'भूधर' बीनवे, कब मिलहिं वे मुनिराज;
यह आस मनकी कब फले, मेरे सरहिं सगरे काज।
संसार - विषम - विदेशमें, जे बिना कारन वीर;
ते साधु मेरे उर बसो, मेरी हरहु पातक-पीर।८

बारहवाँ पाठ

जीव और अजीव

शिष्य—गुरुजी, जीव किसे कहते हैं?

गुरु—जिसमें जान या ज्ञान हो, वह जीव है—अर्थात् जिसमें सुख-दुःखको मालूम करनेकी ताकत है, जो चलता-फिरता, खाता-पीता और बढ़ता है, उसे जीव कहते हैं। जैसे—मनुष्य, हाथी, घोड़ा, पक्षी, कीड़े-मकोड़े, पेड़, पहाड़ वगैरह।

शिष्य—गुरुजी, जानवर वगैरह तो जीव हैं, सो मालूम है। परन्तु पेड़-पहाड़ तो चलते-फिरते या खाते-पीते नहीं, फिर ये जीव कैसे हैं?

गुरु—पेड़-पहाड़ भी खाते-पीते और बढ़ते हैं। उनमें आँख, कान, नाक और जीभ नहीं है, पर वे जमीनसे रस खींचकर अपना शरीर बढ़ाते हैं, इसलिए उनमें जान है।

जीव हैं। ये सब जीव सरदी, गरमी, धूप, छाँह, हवा या अन्य पदार्थ शरीरकी चमड़ीसे छुए जानेसे जान जाते हैं। इनके एक स्पर्श-इन्द्रियके सिवा और कोई इन्द्रिय नहीं होती।

शिष्य—दो इन्द्रिय जीव कौनसे होते हैं?

गुरु—जिनके पहली स्पर्शन और दूसरी रसना-इन्द्रिय हो, वे दो-इन्द्रिय जीव हैं। जैसे—लट, केंचुआ, शंख, जोंक वगैरह। इनके स्पर्शन और रसना ये दो ही इन्द्रियाँ होती हैं।

शिष्य—तीन-इन्द्रिय जीव कौनसे हैं?

गुरु—जिनके (१) स्पर्शन, (२) रसना और (३) घ्राण—तीन इन्द्रियाँ होती हैं, उनको तीन-इन्द्रिय जीव कहते हैं। जैसे—चींटी, खटमल, जूं वगैरह।

शिष्य—मक्खी, ततैया, भौंरा आदि कै-इन्द्रिय जीव हैं?

गुरु—इनके (१) स्पर्शन, (२) रसना, (३) घ्राण और (४) चक्षु—ये चार इन्द्रियाँ होती हैं, इसलिए इनको चार-इन्द्रिय जीव कहते हैं।

शिष्य—और पंचेन्द्रिय जीव कौन-से होते हैं?

गुरु—मनुष्य, देव, नारकी तथा गाय, बैल, घोड़ा, हाथी, चिड़िया, कौआ, कबूतर वगैरह पशु-पक्षी इन सबके पाँचों इन्द्रियाँ होती हैं, इसलिए ये सब पंचेन्द्रिय जीव हैं।

शिष्य—जीवके क्या इतने ही भेद हैं या और भी हैं?

गुरु—इनको दो भेदोंसे भी बाँटा जा सकता है—एक 'त्रस' और दूसरे 'स्थावर'। जिनके दोसे लेकर पाँच तक इन्द्रियाँ हों, उन्हें त्रस जीव कहते हैं। जैसे—आदमी, गाय, चींटी और

जीवको सताना पाप है?' मनसुखने कहा—'वाह रे, इसमें पापका क्या काम है?' धनसुखने कहा—'भाई मनसुख, तुम यह छड़ी मेरे हाथमें दो और मैं इस छड़ीसे तुम्हें मारूँ, तो तुम्हें कैसा लगे?' मनसुखने कहा—'मेरे मारेगा, तो मुझे बहुत चोट लगेगी।' धनसुखने कहा—'जब तुम्हें चोट लगेगी, तो इस पिल्लेको क्यों न लगेगी? भाई मनसुख, जिस प्रकार अपना जीव अपनेको प्यारा लगता है, उसी प्रकार कुत्ता, बिल्ली, गाय, बैल आदि सभी जीवोंको अपना जीव प्यारा लगता है। इनको मारनेसे हमारी तरह इनको भी बड़ा-भारी दुःख होता है। इसलिए किसी भी जीवको सताना, दुःख देना या पीड़ा पहुंचाना कदापि उचित नहीं है। दूसरेको दुःख देनेसे 'हिंसा' नामका बड़ा-भारी पाप लगता है।' तब मनसुखने कहा—'भाई धनसुख, तुम्हारे कहनेसे अब मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया कि जिस प्रकार किसीके मारनेसे अपनेको दुःख होता है, उसी तरह सब जीवोंको दुःख होता है। क्यों भाई धनसुख, तुम्हें यह बात किसने समझाई?' धनसुखने कहा—'भाई, मैं जैन-पाठशालामें पढ़ता हूं। हमारी पुस्तकमें जीव-दया पालन करनेका बहुत उपदेश [illegible]

इस - हिंसा चार प्रकारकी मानी गई है। जैसे- (१) संकल्पी-हिंसा, (२) आरम्भी-हिंसा, (३) उद्यमी-हिंसा और (४) विरोधी-हिंसा।

१—अपने मनमें संकल्प या इरादा करके किसी जीवको मारने या पीड़ित करनेको 'संकल्पी-हिंसा' कहते हैं।

२—गृहस्थके घरमें जो किसी चीजके कूटने या पीसने, रसोई बनाने, बुहारी देने आदि आरम्भ, अर्थात् घर-गृहस्थीके जरूरी काम, प्रमाद-रहित होकर यत्नाचार या सावधानीसे करनेपर भी चींटी आदि अनेक जीवोंकी हिंसा होती है, उसको आरम्भी-हिंसा कहते हैं।

३—अन्नके कोठे भरने, अनाज आदि चीजें खरीदने और बेचने, खेती करने, कल-कारखाने खोलने आदि रोजगार करनेमें जो हिंसा होती है, उसको उद्यमी-हिंसा कहते हैं।

४—राजा-महाराजाओंको अपनी प्रजाकी रक्षाके लिए या देशमें शान्ति-स्थापन करनेके लिए शत्रुकी सेनासे युद्ध वगैरह करनेमें जो हिंसा होती है, उसको विरोधी-हिंसा कहते हैं।

इन चार प्रकारकी सब-हिंसाओंमें से गृहस्थ केवल संकल्पी-हिंसाका त्याग कर सकता है। अन्य तीन हिंसाओंको यथाशक्ति त्याग करनेका गृहस्थोंको प्रयत्न करना चाहिए, ऐसा [illegible] उपदेश है। इसलिए [illegible]

त्रस - हिंसा चार प्रकारकी मानी गई है। जैसे—(१) संकल्पी-हिंसा, (२) आरम्भी-हिंसा, (३) उद्यमी-हिंसा और (४) विरोधी-हिंसा।

१—अपने मनमें संकल्प या इरादा करके किसी जीवको मारने या पीड़ित करनेको 'संकल्पी-हिंसा' कहते हैं।

२—गृहस्थके घरमें जो किसी चीजके कूटने या पीसने, रसोई बनाने, बुहारी देने आदि आरम्भ, अर्थात् घर-गृहस्थीके जरूरी काम, प्रमाद-रहित होकर यत्नाचार या सावधानीसे करनेपर भी चींटी आदि अनेक जीवोंकी हिंसा होती है, उसको आरम्भी-हिंसा कहते हैं।

३—अन्नके कोठे भरने, अनाज आदि चीजें खरीदने और बेचने, खेती करने, कल-कारखाने खोलने आदि रोजगार करनेमें जो हिंसा होती है, उसको उद्यमी-हिंसा कहते हैं।

४—राजा-महाराजाओंको अपनी प्रजाकी रक्षाके लिए या देशमें शान्ति-स्थापन करनेके लिए शत्रुकी सेनासे युद्ध वगैरह करनेमें जो हिंसा होती है, उसको विरोधी-हिंसा कहते हैं।

इन चार प्रकारकी त्रस-हिंसाओंमें से गृहस्थ केवल संकल्पी-हिंसाका त्याग कर सकता है। अन्य तीन हिंसाओंको यथाशक्ति त्याग करनेका गृहस्थोंको प्रयत्न करना चाहिए, ऐसा भगवानका उपदेश है। इसलिए जिनको श्रावक बनना हो, उनको मन-वचन-काय और कृत कारित-अनुमोदनासे संकल्पी-हिंसाका त्याग तो अवश्य ही करना चाहिए। और अन्य तीन प्रकारकी हिंसाओंका, जिनमें जितना बच सके, यथाशक्ति त्याग करना चाहिए, अर्थात्

है। दासीने भय-चकित होकर पूछा—'लला, तुम इस तरह छटपटा क्यों रहे हो?' लड़केने कहा—'तू माको बुला ला। उनसे जब तक मैं अपने दुःखकी बात न कहूंगा, तब तक मैं किसी तरहसे भी नहीं जी सकता।'

दासी इस बातको सुनकर घबराहटके साथ उसकी माके पास गई, और उनसे यह बात कही। सुनते ही मा अपने लड़केके पास दौड़ी-दौड़ी पहुंची। स्वरूपचन्द्र अपनी माताको देखते ही गलेमें हाथ डालकर अपने आँसुओंसे माताका हृदय सींचने लगा। उसे इस तरह रोते देख माताने बार-बार उससे दुःखकी बात पूछी। बहुत देरके बाद उसने गद्गद स्वरमें कहा— 'मा, मुझे क्षमा करना। आज मैंने दुष्ट बालककी तरह बहुत ही खराब काम कर डाला है। मैंने एक झूठी बात कही है, और तुमसे भी छुपा रखी है। मैंने अपने मित्रोंके साथ खेलते समय एक असत्य वचन कहकर उन्हें जीत लिया, और उस जीतके लिए मैंने यह बात सर्वथा छुपा रखी। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि झूठ बोलना बड़ा पाप है। मुझे यहाँ या परलोकमें कभी-न-कभी इसका बहुत बुरा फल भोगना पड़ेगा। इसके सिवा बात प्रगट हो जायगी, तो सब कोई मुझे मिथ्या-वादी (झूठा) समझकर घृणा करेंगे। इसी बातकी चिन्तासे मेरा मन बहुत व्याकुल हो गया है, और इसीलिए मैंने तुम्हें बुलाया है।'—इतना कहकर वह माके मुंहकी ओर आशा-भरी आँखोंसे देखने लगा।

इसके उत्तरमें स्वरूपचन्द्रकी माने कहा—बेटा, तो कोई

किये हुए अपराधको स्वीकार या मंजूर करके उसके लिए पश्चात्ताप करता है और भविष्यमें अपनेको उन अपराधोंसे दूर रखनेके लिए दृढ़-प्रतिज्ञ हो जाता है, उसका अपराध सब जगह माफ हो जाता है। यदि इस तरहका बुरा काम आगे फिर कभी नहीं करोगे और इस कसूरके लिए मित्रोंसे माफी माँग लोगे, तो तुम्हें सब कोई प्यार करेंगे। एक बार अपराध करनेसे तुम बुरे नहीं कहला सकते।"

स्वरूपचंदको अपनी माताके इस प्रकार योग्य वचन सुनकर बहुत सन्तोष हुआ और वह आरामसे सो गया। दूसरे दिन बिस्तरसे उठकर वह अपने मित्रोंके पास गया, और अपने उस अपराधको प्रगट करके उनसे क्षमा माँगी, तो सब जने उसे क्षमा करके उसकी प्रशंसा करने लगे। उस दिनसे फिर कभी स्वरूपचन्दने मिथ्या-भाषण नहीं किया।

हे बालको, जगतमें ऐसा कोई भी आदमी न होगा, जिससे किसी प्रकारका अपराध न हुआ हो। परन्तु जो कोई अपराध हो जानेके बाद उसे स्वीकार कर लेते हैं और भविष्यमें वैसा अपराध न करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेते हैं, वे उच्च श्रेणीके मनुष्य समझे जाते हैं।

तुमको भी स्वरूपचन्दके समान असत्य-भाषणका त्यागकर सत्य-भाषी बालक बनना चाहिए।

है। दासीने भय-चकित होकर पूछा—'लल्ला, तुम इस तरह छटपटा क्यों रहे हो?' लड़केने कहा—'तू माको बुला ला। उनसे जब तक मैं अपने दुःखकी बात न कहूंगा, तब तक मैं किसी तरहसे भी नहीं जी सकता।'

दासी इस बातको सुनकर घबराहटके साथ उसकी माके पास गई, और उनसे यह बात कही। सुनते ही मा अपने लड़केके पास दौड़ी-दौड़ी पहुंची। स्वरूपचन्द्र अपनी माताको देखते ही गलेमें हाथ डालकर अपने आँसुओंसे माताका हृदय सींचने लगा। उसे इस तरह रोते देख माताने बार-बार उससे दुःखकी बात पूछी। बहुत देरके बाद उसने गद्गद स्वरमें कहा—'मा, मुझे क्षमा करना। आज मैंने दुष्ट बालककी तरह बहुत ही खराब काम कर डाला है। मैंने एक झूठी बात कही है, और तुमसे भी छुपा रखी है। मैंने अपने मित्रोंके साथ खेलते समय एक असत्य वचन कहकर उन्हें जीत लिया, और उस जीतके लिए मैंने वह बात सर्वथा छुपा रखी। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि झूठ बोलना बड़ा पाप है। मुझे यहाँ या परलोकमें कभी-न-कभी इसका बहुत बुरा फल भोगना पड़ेगा। इसके सिवा बात प्रगट हो जायगी, तो सब कोई मुझे मिथ्या-वादी (झूठा) समझकर घृणा करेंगे। इसी बातकी चिन्तासे मेरा मन बहुत व्याकुल हो गया है, और इसीलिए मैंने तुझे बुलाया है।' इतना कहकर वह माके मुंहकी ओर आशा-भरी आँखोंसे देखने लगा।

इसके उत्तरमें स्वरूपचन्द्रकी माने कहा—'बेटा, जो कोई

किये हुए अपराधको स्वीकार या मंजूर करके उसके लिए पश्चात्ताप करता है और भविष्यमें अपनेको उन अपराधोंसे दूर रखनेके लिए दृढ़-प्रतिज्ञ हो जाता है, उसका अपराध सब जगह माफ हो जाता है। यदि इस तरहका तुरा काम आगे फिर कभी नहीं करोगे और इस कसूरके लिए मित्रोंसे माफी माँग लोगे, तो तुम्हें सब कोई प्यार करेंगे। एक बार अपराध करनेसे तुम बुरे नहीं कहला सकते।"

स्वरूपनंदको अपनी माताके इस प्रकार योग्य वचन सुनकर बहुत सन्तोष हुआ और वह आरामसे सो गया। दूसरे दिन बिस्तरसे उठकर वह अपने मित्रोंके पास गया, और अपने उस अपराधको प्रगट करके उससे क्षमा माँगी, तो सब जने उसे धन्य करके उसकी प्रशंसा करने लगे। उस दिनसे फिर कभी स्वरूपनंदने मिथ्या-भाषण नहीं किया।

है बालको, आजतक ऐसा कोई भी आदमी न होगा, जिससे किसी प्रकारका अपराध न हुआ हो। परन्तु जो कोई अपराध हो जानेके बाद उसे स्वीकार कर लेते हैं और भविष्यमें वैसा अपराध न करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेते हैं, वे उच्च श्रेणीके मनुष्य समझे जाते हैं।

तुमको भी स्वरूपनंदके समान अपराध-आदतको त्यागकर सत्य-भाषी बनना चाहिए।

उन्नीसवाँ पाठ

सत्यकी महिमा

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ;
जाके हिरदे साँच है, ताके हिरदे 'आप' ।१
सत्य-नावपर जो चढ़त, या भव-सिंधु अपार ;
आप तरे अरु औरको, देवे पार उतार ।२
जहाँ सत्य तहँ धर्म है, जहाँ सत्य तहँ योग ;
जहाँ सत्य तहँ श्री रहत, जहाँ सत्य तहँ भोग ।३
जो श्रावकका सुत कहे, नितप्रति साँची बात ;
मान-प्रतिष्ठा पायकर, जगमें होय विख्यात ।४
एक साँचकी आँटमें, लाखनका व्यापार ;
चलता है बाजारमें, यामें नाहिं लगार ।५
झूठेका जगमें घटे, मान, बढ़हि अपमान ;
झूठ वचनके पापतें, पावे दुःख महान् ।६
इह कारण सब जन सदा, बोलो साँची बात ;
सत्य-अणुव्रत धारकर, सुख भोगो दिन-रात ।७

बीसवाँ पाठ

आहार या भोजन

संसारके सभी जीवोंको आहारकी अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि बिना आहारके कोई जीव जी नहीं सकता। और सब जीवोंको तो आहार तयार मिलता है, परन्तु मनुष्यको अपना भोजन स्वयं तैयार करना पड़ता है। मनुष्यके शरीरको

हजम हो जाता है, इसलिए दिनमें चार या पाँच बजे भोजन अवश्य करना चाहिए। रात्रिको भोजन करनेसे अनेक जीवोंकी हिंसा तो होती ही है, साथ ही भोजन करके सो जानेसे वह अच्छी तरह पचता नहीं और अनेक रोग पैदा करता है।

(५) प्रतिदिन एक ही नियत समयपर भोजन करना चाहिए, नियत समयको टालकर अथवा घंटे-आध-घंटे पहले ही भोजन करनेसे हानि होती है, इसलिए नित्य नौ बजेसे बारह बजेके भीतर, अपने निर्दिष्ट समयपर ही भोजन करना चाहिए। नौ बजेसे पहले किसी तरहका भोजन या दूध, ठंडाई, चाय वगैरह पतले पदार्थ कभी नहीं खाना-पीना चाहिए।

(६) सदा एक ही प्रकारका भोजन नहीं करना चाहिए। जैसे-जैसे ऋतु बदलती जाय, वैसे-वैसे भोजन भी बदलते रहना चाहिए। साथ ही देश, काल, उमर, उद्यम, रुचि और शरीरके बलके अनुसार भोजन भी बदलते रहना चाहिए।

इक्कीसवाँ पाठ

चोरीका फल

गंगाराम रोज पाठशाला पढ़ने जाया करता था। एक दिन वह पाठशालासे किसीका एक चाकू चुराकर अपने घर ले आया। इसपर उसकी माने कुछ भी नहीं कहा, बल्कि धमकानेके बजाय उस चाकूको बेचकर उसके लिए बाजारसे मिठाई मँगवा दी। अब तो गंगारामको मिठाईका लालच लग गया और वह चोरी करनेकी ताकमें रहने लगा। वह जो कुछ चुराकर

चोरकी यह बात सुन सब लोग उसकी माको ही धिक्कारने लगे।

इसलिए हे बालको, चोरी करना, असत्य बोलना आदि जो-जो बुरे काम हैं और जिन्हें सब समझदार लोग बुरा कहते हैं, उन्हें तुम कभी और किसीके भी कहनेसे मत करो। अगर कभी एक बार भी कोई बुरा काम करोगे, तो धीरे-धीरे गंगारामकी तरह तुम्हारी भी बुरी आदत पड़ जायगी; क्योंकि बचपनमें जो स्वभाव पड़ जाता है, वह मरते-दम तक रहता है। इसलिए बचपनसे ही अच्छे-अच्छे काम करना सीखो। जिस कामको माता-पिता आदि गुरुजन बुरा कहें, उसको कदापि मत करो। और किसीकी मा अगर गंगारामकी माके समान हो, तो उस लड़केको चाहिए कि वह अपनी माको गंगारामकी यह कहानी पढ़कर सुना दे। बेचारे गंगारामको अगर पहलेसे ऐसी कोई कहानी मालूम होती, तो वह माको सुना देता और फाँसीसे बच जाता।

बाईसवाँ पाठ

विद्याकी महिमा

नृप-पद अरु विद्या कबहुं, होत न एक समान;
नृपति पूज्य निज देशमें, सब जग विद्यावान।१
पंडितमें सब गुण लसहिं, मूढ़ दोषकी खान;
सहस मूढ़से कर कहा, पंडित एक सुजान।२
पर-नारीको मात-सम, पर-धन धूलि समान;
सब जीवनको आप सम, गिने सो पंडित जान।३

असदाचारी बालकोंकी कक्षा खोल दी और विद्यार्थियोंसे कह दिया कि जो लड़के सदाचारी हों, वे सदाचारी बालकोंकी कक्षामें बैठें, और जो असदाचारी हों, वे दूसरी असदाचारी बालकोंकी कक्षामें बैठें। यह आज्ञा सुनकर सब विद्यार्थी सदाचारी कक्षामें जा बैठे और असदाचारी कक्षामें एक भी लड़का नहीं बैठा।

यह देख अध्यापकजीने कहा—तुम तो सबके सब सदाचारी कक्षामें बैठ गये, ऐसा नहीं चाहिए। तुममें से जो-जो लड़के असदाचारी हैं, उनको दूसरी कक्षामें बैठना चाहिए।

उन लड़कोंमें से स्वरूपचन्द नामक एक सुबोध लड़का था, वह उठकर अध्यापक महाशयको हाथ जोड़कर विनयके साथ बोला—पंडितजी, सदाचारी लड़के कौन होते हैं और असदाचारी कौन होते हैं, इसका भेद समझावें, तब आपकी आज्ञाका पालन हो सकेगा।

अध्यापक—जो लड़का पाप-कार्य यानी बुरे काम करता है, वह असदाचारी है और जो पाप-कार्य नहीं करता और अपने आचरण ठीक रखता है, वह लड़का सदाचारी है।

स्वरूपचन्द—पाप-कार्य कौन-कौनसे हैं, कृपाकर बतावें।

अध्यापक—हिंसा करना, चोरी करना, झूठ बोलना, कुशील सेवन करना, परिग्रहका संग्रह करना, मायाचार यानी छल-कपट करना, क्रोध यानी गुस्सा करना, मान-अहंकार या घमंड करना, जुआ खेलना, मांस खाना, मदिरा, भंग, तमाकू आदि नशेकी चीजें पीना, लड़ाई-झगड़ा करना, चुगली करना, निंदा करना, किसीसे ईर्षा भाव रखना, देव, गुरु, शास्त्र तथा बड़ोंका

कुछ समय बाद धन्नूलाल विद्यार्थी अपनी पुस्तकको देखना छोड़ खिड़कीकी राहसे सड़ककी तरफ देखने लगा। उसके पास रूपचन्द बैठा था, उसने पंडितजीको कह दिया—"देखिये पंडितजी, धन्नूलाल सड़ककी तरफ देख रहा है।" पंडितजीने धन्नूलालकी तरफ देखा, तो वह सावधान होकर अपनी पुस्तकको पढ़ने लगा। तब पंडितजीने रूपचन्दसे पूछा—"तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि धन्नूलाल सड़ककी तरफ देखता था?" तब रूपचन्दने कहा—"पंडितजी, मैंने अपनी आँखोंसे देखा है—वह सड़ककी तरफ देख रहा था। मैं क्या आपके सामने झूठ बोलता हूं?" पंडितजीने कहा—"बेशक तुम झूठ नहीं बोलते, परन्तु जिस वक्त तुम धन्नूलालकी तरफ देख रहे थे, उस वक्त तुम्हारी दृष्टि क्या पुस्तककी तरफ थी?" यह बात सुनकर रूपचन्द शरमा गया, और गर्दन नीची करके अपनी पुस्तककी तरफ देखने लगा। तब पंडितजीने रूपचन्दकी पीठपर हाथ फेरकर कहा—"भाई, दूसरेका दोष देखनेके लिए अपनेको दोषी नहीं बनाना चाहिए। क्योंकि वास्तवमें वही दोषी है, जो दूसरोंके दोष देखा करता है। दूसरोंके दोष देखनेवालोंको ही लोग दोषी समझते हैं। आज तो मैं तुम्हें माफ करता हूँ, पर फिर कभी ऐसा काम मत करना।"

इसलिए तुम्हें भी अपने गुण और दूसरोंके अवगुण कदापि प्रकट नहीं करना चाहिए।

लालनमें बहु दोष है, ताड़न है गुण-खान ;
तिह कारण सुत शिष्यको, ताड़, लड़ावन हान ।४
सुरभि-पुष्प-युत एक तरु, सब वन करत सुवास ;
त्यों गुनवान सुपूत इक, निज कुल करत प्रकास ।५
अग्नि-सहित तरु एक ही, करत सकल वन दाह ;
त्यों कुपूत निज वंशको, नाश करहि छिन माह ।६
वस्त्राभूषण सहित जड़, सुजन-सभा बिच जाय ;
जब लगि कछु बोले नहीं, तब लगि शोभा पाय ।७
गज-द्वार कुसमय, समर, उत्सव, व्यसन, मसान ;
इनमें जो साथी सदा, प्रकृत बन्धु सोई जान ।८

अट्ठाईसवाँ पाठ

रात्रि-भोजन-त्याग

हीरालाल क्यों मोतीलाल, इतना जल्दी - जल्दी कहाँ जा रहे हो ?

मोतीलाल—भोजन करने जा रहा हूँ ।

हीरालाल तो इतने उतावले क्यों भागे जा रहे हो ?

मोतीलाल - शाम होने आई,— अब जो देर करूँगा, तो रात हो जायगी ।

हीरालाल - रात हो जायगी, तो क्या हुआ ?

मोतीलाल - रातमें जीमना जो न हो सकेगा ।

हीरालाल क्यों, रातमें जीमनेसे क्या होता है ?

मोतीलाल क्यों, तुम इतना भी नहीं जानते ?

उनतीसवाँ पाठ

मेढ़क और बैल

एक तालाबके किनारे दो बैल आपसमें लड़ रहे थे। उस तालाबमें बहुतसे मेंढ़क थे। उनमें से एक मेढ़कने सिर उठाकर दूसरे मेढ़कसे कहा—भाई, ये बैल तो आपसमें लड़ने लगे, अब क्या करें; अपना क्या हाल होगा? यह सुनकर दूसरे मेढ़कने कहा—ये बैल लड़ते हैं, तो लड़ने दो। हम मेढक जल-जन्तु हैं और ये बैल हैं,—हमारा इनसे क्या सम्बन्ध, जो इनकी लड़ाईसे डरें या चिन्ता करें? तब पहले मेढ़कने कहा—भाई, तेरा कहना ठीक है, अपना सम्बन्ध तो इनसे कुछ नहीं है; परन्तु ये लड़ते-लड़ते इस छोटेसे तालाबमें आ पड़ें, तो अपना क्या हाल होगा? इतना कहते-कहते ही एक बैलने दूसरे बैलको धक्का दिया, तो वह तालाबमें आ पड़ा और उसके सपाटेमें वह दूसरा मेढक भी आ गया। पहला मेढक बोला—देखा भाई, तूने कहा था कि हमारा इनसे क्या सम्बन्ध है, जो चिन्ता करें? अब तो प्रत्यक्ष फल देख लिया? अपने ऊपर आ पड़ने, तो हमारी जान जाती या नहीं? भाई, जहाँ लड़ाई हो, उसके पास भी खड़ा न होना चाहिए।

इसलिए हे बालको, तुम परस्पर कलह (लड़ाई) कदापि न किया करो, और अन्य किसीमें लड़ाई होती हो, तो तुम उसके पास खड़े भी न रहो। यदि खड़े रहोगे, तो तुम्हारे ऊपर भी मेढ़की-सा संकट आ सकता है।

—

स्कन्ध कहते हैं। धूप, छाया, अँधेरा, चाँदनी, लकड़ी, कंकड़, पत्थर, मकान वगैरह सब पुद्गलके स्कन्ध या पर्याय हैं।

शिष्य—स्पर्श किसे कहते हैं और उसके कितने भेद हैं?

गुरु—स्पर्श उसे कहते हैं, जो स्पर्शन-इन्द्रियसे यानी छूनेसे जाना जाय। स्पर्श आठ प्रकारका होता है—(१) स्निग्ध (चिकना), (२) रूक्ष (रूखा), (३) शीत (ठंडा), (४) उष्ण (गरम), (५) मृदु (कोमल या नरम), (६) कर्कश (कठोर या कड़ा), (७) गुरु (भारी), (८) लघु (हलका)। जैसे—घीमें स्निग्ध, रूक्ष, पानीमें शीत, अग्निमें उष्ण, मक्खनमें मृदु, पत्थरमें लोहेमें गुरु और रुईमें लघु स्पर्श है।

शिष्य—रस किसे कहते हैं और वह कितने

गुरु—रस उसे कहते हैं, जो रसना-इन्द्रिय जाना जाय। रस पाँच प्रकारका होता है—(१) या चरपरा), (२) कटु (कडुआ), (३) कषाय (कसैला), (४) अम्ल (खट्टा) और (५) मधुर (मीठा)। जैसे—मिरचमें कटु, आँवलेमें कषैला, नीबूमें खट्टा और मीठा रस है।

शिष्य—गन्ध किसे कहते हैं और वह कि

गुरु—गन्ध उसे कहते हैं, जो घ्राण-इन्द्रि जाना जाय। गन्ध दो प्रकारकी होती है—एक और दूसरी दुर्गन्ध (बदबू)। जैसे—गुला और लहसुनमें दुर्गन्ध।

शिष्य—वर्ण किसे कहते हैं और वह

स्कन्ध कहते हैं। धूप, छाया, अँधेरा, चाँदनी, लकड़ी, कंकड़, पत्थर, मकान वगैरह सब पुद्गलके स्कन्ध या पर्याय हैं।

शिष्य—स्पर्श किसे कहते हैं और उसके कितने भेद हैं?

गुरु—स्पर्श उसे कहते हैं, जो स्पर्शन-इन्द्रियसे यानी छूनेसे जाना जाय। स्पर्श आठ प्रकारका होता है—(१) स्निग्ध (चिकना), (२) रूक्ष (रूखा), (३) शीत (ठंडा), (४) उष्ण (गरम), (५) मृदु (कोमल या नरम), (६) कर्कश (कठोर या कड़ा), (७) गुरु (भारी), (८) लघु (हलका)। जैसे—घीमें स्निग्ध, बालूमें रूक्ष, पानीमें शीत, अग्निमें उष्ण, मक्खनमें मृदु, पत्थरमें कर्कश, लोहेमें गुरु और रूईमें लघु स्पर्श है।

शिष्य—रस किसे कहते हैं और वह कितने प्रकारका है?

गुरु—रस उसे कहते हैं, जो रसना-इन्द्रिय यानी जीभसे जाना जाय। रस पाँच प्रकारका होता है—(१) तिक्त (तीता या चरपरा), (२) कटु (कड़ुआ), (३) कषाय (कसैला), (४) अम्ल (खट्टा) और (५) मधुर (मीठा)। जैसे—मिरचमें चरपरा, नीममें कटु, आँवलेमें कसैला, नीबूमें खट्टा और गुड़ या खाँडमें मीठा रस है।

शिष्य—गन्ध किसे कहते हैं और वह कितने प्रकारकी है?

गुरु—गन्ध उसे कहते हैं, जो घ्राण-इन्द्रिय यानी नाकसे जानी जाय। गन्ध दो प्रकारकी होती है—एक सुगन्ध (सुगन्ध) और दूसरी दुर्गन्ध (बदबू)। जैसे—गुलाबके फूलमें सुगन्ध और मछलीके तेलमें दुर्गन्ध।

शिष्य—वर्ण किसे कहते हैं और वह कितने प्रकारका है?

स्कन्ध कहते हैं। धूप, छाया, अँधेरा, चाँदनी, लकड़ी, कंकड़, पत्थर, मकान वगैरह सब पुद्गलके स्कन्ध या पर्याय हैं।

शिष्य—स्पर्श किसे कहते हैं और उसके कितने भेद हैं?

गुरु—स्पर्श उसे कहते हैं, जो स्पर्शन-इन्द्रियसे यानी छूनेसे जाना जाय। स्पर्श आठ प्रकारका होता है—(१) स्निग्ध (चिकना), (२) रूक्ष (रूखा), (३) शीत (ठंडा), (४) उष्ण (गरम), (५) मृदु (कोमल या नरम), (६) कर्कश (कठोर या कड़ा), (७) गुरु (भारी), (८) लघु (हलका)। जैसे—घीमें स्निग्ध, बालूमें रूक्ष, पानीमें शीत, अग्निमें उष्ण, मक्खनमें मृदु, पत्थरमें कर्कश, लोहेमें गुरु और रुईमें लघु स्पर्श है।

शिष्य—रस किसे कहते हैं और वह कितने प्रकारका है?

गुरु—रस उसे कहते हैं, जो रसना-इन्द्रिय यानी जीभसे जाना जाय। रस पाँच प्रकारका होता है—(१) तिक्त (तीता या चरपरा), (२) कटु (कडुआ), (३) कषाय (कसैला), (४) अम्ल (खट्टा) और (५) मधुर (मीठा)। जैसे—मिरचमें चरपरा, नीममें कटु, आँवलेमें कसैला, नीबूमें खट्टा और गुड़ या चीनीमें मीठा रस है।

शिष्य—गन्ध किसे कहते हैं और वह कितने प्रकारकी है?

गुरु—गन्ध उसे कहते हैं, जो घ्राण-इन्द्रिय यानी नाकसे जानी जाय। गन्ध दो प्रकारकी होती है—एक सुगन्ध (सुगन्ध) और दूसरी दुर्गन्ध (बदबू)। जैसे—गुलाबके फूलमें सुगन्ध और मट्टीके तेलमें दुर्गन्ध।

शिष्य—वर्ण किसे कहते हैं और वह कितने प्रकारका है?

गुरु—वर्ण (रूप या रंग) उसे कहते हैं, जो नेत्र-इन्द्रिय वाली आँखोंसे जाना जाय। वर्ण पाँच प्रकारका होता है—(१) कृष्ण (काला), (२) नील, (३) रक्त (लाल), (४) पीत (पीला) और (५) श्वेत (सफेद)। जैसे—कोयलेमें काला, नीलमें नीला, सिंदूरमें लाल, हल्दीमें पीला और दूधमें श्वेत वर्ण है।

शिष्य—तब तो गुरुजी, स्वर्ण भाट, रस पाँच, गन्ध दो और वर्ण पाँच। सब मिलाकर पुद्गलके बीस गुण हो गये।

गुरु—हाँ, पुद्गलके बीस गुण होते हैं।

शिष्य—अच्छा गुरुजी, धर्म-द्रव्य किसे कहते हैं?

गुरु—धर्म-द्रव्य उसे कहते हैं, जो जीव और पुद्गलोंको चलनेमें सहकारी हो अर्थात् मदद देता हो। जैसे—पानी चलती हुई मछलीको मदद पहुँचाता है, परन्तु ठहरी हुई मछलीको चलाता नहीं। यह धर्म-द्रव्य तमाम लोकमें फैला हुआ एक ही अखंड और सूक्ष्म वाली आँखोंसे न दीखनेवाला पदार्थ है।

शिष्य—अधर्म-द्रव्य किसे कहते हैं?

गुरु—अधर्म-द्रव्य उसे कहते हैं, जो जीव और पुद्गलोंके ठहरनेमें सहकारी हो। जैसे, पेड़की छाया धके हुए मुसाफिरोंको ठहरनेमें सहकारी है, किंतु चलते हुए मुसाफिरोंको रोकती नहीं। यह अधर्म-द्रव्य भी धर्म-द्रव्यकी तरह सर्व लोकमें व्याप्त वाली फैला हुआ एक ही अखंड और सूक्ष्म पदार्थ है।

शिष्य—तो ये धर्म और अधर्म-द्रव्य जीव और पुद्गलोंको जबरदस्ती चलाते या ठहराते नहीं?

गुरु—नहीं, सिर्फ चलने या ठहरनेमें सहायक होते हैं, परन्तु

यह बात ध्यानमें रखना चाहिए कि धर्म-द्रव्य लोकमें न होता, तो सब पदार्थ एक ही जगह पड़े रहते, और अधर्म-द्रव्य न होता, तो सब पदार्थ उड़े-उड़ फिरते। दूसरी बात यह कि यहाँ धर्म-अधर्म शब्दसे साधारण धर्म-अधर्म न समझ लेना, जिनका अर्थ पुण्य-पाप है, या आत्माको मुक्त करनेवाला रत्नत्रय धर्म है।

शिष्य—काल-द्रव्य क्या है, और उसके कितने भेद हैं?

गुरु—काल-द्रव्य उसे कहते हैं, जो समस्त द्रव्योंकी पर्याय (हालतें) बदलनेमें सहकारी हो। काल-द्रव्य (१) निश्चय-काल और (२) व्यवहार-कालके भेदसे दो प्रकारका है।

शिष्य—निश्चयकाल किसे कहते हैं?

गुरु—लोकाकाशके प्रत्येक प्रदेशमें निश्चय-कालका एक-एक अणु, घड़ेमें बाजरेकी तरह, भरा हुआ है। ये कालाणु असंख्य और सूक्ष्म हैं, जो नेत्रोंसे नहीं दीखते।

शिष्य—व्यवहार-काल किसे कहते हैं?

गुरु—ऊपर बताये हुए निश्चय-काल-द्रव्यकी पर्यायको व्यवहार-काल कहते हैं। जैसे—पल, घड़ी, पहर, दिन, सप्ताह, पक्ष (पखवाड़ा), मास, वर्ष वगैरह।

शिष्य—आकाश किसे कहते हैं और वह कितने तरहका है?

गुरु—आकाश उसे कहते हैं, जो समस्त पदार्थोंको अवकाश यानी रहनेकी जगह दे। यह वह पदार्थ है, जिसमें समस्त द्रव्य रहते हैं। यह आकाश सर्वव्यापी एक ही अखंड पदार्थ है, परन्तु लोकाकाश और अलोकाकाशके भेदसे दो प्रकारका कहलाता है।

शिष्य—लोकाकाश और अलोकाकाश किसे कहते हैं?

गुरु—आकाशमें जहाँ तक जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये पाँच द्रव्य रहते हैं, उतने आकाशको तो लोकाकाश कहते हैं, और लोकाकाशके बाहर चारों ओर जीव-पुद्गलोंसे शून्य जो आकाश-ही-आकाश है, उसे अलोकाकाश कहते हैं।

शिष्य—गुरुजी, आपने जो अभी 'प्रदेश' का नाम लिया है, वह क्या चीज है?

गुरु—आकाशके सबसे छोटे टुकड़ेको प्रदेश कहते हैं।

इकतीसवाँ पाठ

उपकारका बदला : प्रत्युपकार

एक सिंह [illegible] दिनोंमें [illegible] आयामें सो रहा था। उसके शरीरपर अनेक चूहे [illegible] घूम-फिर रहे थे। इतनेमें सिंह जाग उठा, और एक चूहेको पकड़ लिया। चूहेने [illegible] दीनताके साथ [illegible] महाराज, [illegible] राजा है, और मैं एक [illegible] हूँ। [illegible] कीजिये। सिंहको [illegible] चूहेने [illegible] कहा—[illegible] आपको [illegible] है। सिंहने [illegible] कहा कि [illegible] है। [illegible] है। [illegible] [illegible]

नीचे किसी शिकारीने सिंहको फँसाकर मार डालनेके लिए जाल बिछा दिया। सिंह सदाकी तरह वहाँ आया, और आते ही जालमें फँस गया। उस जालसे छूटनेके लिए ज्यों-ज्यों वह जोर करता था, त्यों-त्यों जालमें बुरी तरह जकड़ता जाता था। जिससे चारों पाँव हिलानेमें असमर्थ होकर उसने जीनेकी आशा छोड़ दी और बड़े जोरसे चीखने लगा। उसका चीखना सुन वही चूहा वहाँ दौड़ा आया और अपने जीवनदाता सिंहको महाकष्टमें पड़ा देखकर उसने मनमें विचारा कि उस दिनके मेरे जीवन-दानका बदला देनेका यही अवसर है। तब उसने सिंहसे कहा—महाराज, घबड़ाइये नहीं। आपका दास हाजिर हो गया है। मुझसे जो कुछ सेवा बनेगी, करूँगा। इतना कहकर उसने वह जाल अपने दाँतोंसे काटकर सिंहको छुड़ा दिया।

सिंहने मन-ही-मन विचार किया कि उस दिन मैं इस चूहेकी बातपर हँसा था, पर अब मेरे ध्यानमें आया कि समयपर एक तिनका भी काममें आता है।

बालको, इस कहानीसे तुम्हें यह शिक्षा लेनी चाहिए कि दुनियामें किसीको छोटा समझना ठीक नहीं। समयपर छोटेसे छोटा किया हुआ उपकार काम आता है। अपने साथ किसीने उपकार किया हो, तो उसको कदापि नहीं भूलना चाहिए, और कहानीके इस चूहेकी तरह अपने उपकारीके दुःखमें उसकी तन, मन और धनसे यथाशक्ति सहायता पहुँचाकर उसका दुःख दूर करनेमें तत्पर रहना चाहिए।

—

बत्तीसवाँ पाठ

याद रखने लायक दस नियम

१—काम जितना हो सके, उतना अच्छा ही करना चाहिए। बुरा काम हरगिज नहीं करना चाहिए। ऐसा करने रहनेसे पापोंका संचय नहीं होता, और शरीर भी स्वस्थ रहता है।

२—जो काम पूरा हो सकता है, उसे कमजोर मत छोड़ो। ऐसा करनेसे कोई भी काम पड़ा नहीं रहेगा।

३—जो काम स्वयं कर सकते हो, उसे दूसरोंसे नहीं कराना चाहिए। इससे तुम पराधीन नहीं रहोगे।

४—हाथमें पैसा आनेसे पहले ही खर्च करनेका विचार मत करो। ऐसा करनेसे तुम किसीके कर्जदार नहीं बनोगे।

५—कोई चीज कितनी ही सस्ती क्यों न मिले, परन्तु जो अपने काम नहीं आवे, उसे हरगिज न खरीदो। इससे तुम फिजूल खर्चसे बचे रहोगे।

६—कभी किसीके सामने सर्व या धर्म मत दिखलाओ। फिर तुम्हारा कोई अपमान न करेगा।

७—भूखसे ज्यादा कभी मत खाओ, बल्कि कुछ कम ही खाओ। फिर तुम कभी बीमार न रहोगे।

८—जो कुछ करना हो, वह सन्तोष और शान्तिके साथ करना। [illegible] इससे स्वयं ही मरने या दूसरेके जीवनके किसी तरहका [illegible] नहीं होगा।

९—[illegible] आदेशमें आकर कोई भी काम मत करो; फिर तुम्हें [illegible] अपने किये दुःखपर पछतावा न होगा।

१०—जो कुछ सुख या दुःख होता है, वह अपने ही किये हुए यानी पाप-पुण्यके अनुसार होता है, और उसका फल अपनेको ही भोगना पड़ता है, हमेशा इस बातको याद रखके काम किया करो। ऐसा करनेसे तुम हमेशा शान्ति और सुखसे रह सकोगे।

—

तेतीसवाँ पाठ

नीतिके दोहे

जहाँ न नृप, श्रोत्रिय, सरित, और वैद्य, धनवान ;
वास करें नहिं एक छिन, पंडित-जन तिहिं थान ।१
आदर नहिं जिहिं देशमें, बन्धु, वृत्ति, नहिं होय ;
नहिं विद्याको आगमन, तहाँ न बसिये कोय ।२
मनके चिन्ते कार्यको, प्रगट करो मत कोय ;
प्रगट कियेतें कार्य वह, सिद्ध न कबहूं होय ।३
कुनदि, कुदेव, कुजीविका, अवर कुद्रव्य, कुनार ;
निन्दित भोजन-पान बुध, तजहु नित्य सुविचार ।४
ऋण, व्याधी अरु अग्निका, शेष न राखहु लेश ;
ये तीनों शेषहिं रहें, क्रम - क्रम बढ़त हमेश ।५
सुत, नारी, सेवक सदा, जा नरके वश होय ;
सम्पतिमें सन्तोष पुनि, स्वर्ग यहींपर सोय ।६
दुष्टा नारी, मित्र शठ, उत्तरदाता भृत्य ;
सर्प-युक्त गृह वास पुनि, मृत्यु हेतु ये सत्य ।७
कोकिल रूप जु मधुर स्वर, पति-सेवा नित जान ;
विद्या रूप कुरूपको, क्षमा रूप तपवान ।८

—

चौतीसवाँ पाठ

परिश्रम

शरीरको नीरोग रखनेके लिए शारीरिक परिश्रम अर्थात् देहसे मेहनत करना बहुत ही जरूरी है, क्योंकि परिश्रम करनेसे शरीरमें ताकत आती है, भूख बढ़ती है, और भूखके समय भोजन करनेसे शरीरमें खून बढ़ता है। परिश्रमी लोग कभी कमजोर नहीं होते, और न कभी किसी कामसे उत्साहहीन ही होते हैं। परिश्रम करनेवालोंका शरीर बहुत ही बलवान और पुष्ट हो जाता है। यही कारण है कि परिश्रम करनेवाले किसान वगैरह काफी ताकतवर होते हैं। जिस प्रकार शारीरिक परिश्रम करनेसे शरीर सबल और पुष्ट होता है, उसी प्रकार शरीरके जिस अंगसे अधिक परिश्रम लिया जाता है, वही अंग अन्यान्य अंगोंकी अपेक्षा अधिक बलिष्ठ हो जाता है। हमेशा चलने-फिरनेवाले जितना चल सकते हैं, उनकी बराबर कभी-कभी चलने-फिरनेवाले हरगिज नहीं चल सकते। क्योंकि बराबर चलने-फिरनेवालोंके दोनों पाँव अधिक बलिष्ठ हो जाते हैं। इसलिए हमें अपने हरएक अंगसे बराबर काम लेते रहना चाहिए, जिससे हमारे सभी अंगोंमें ताकत बनी रहे।

यद्यपि आजकल धनोपार्जनके लिए जो कुछ कार्य किये जाते हैं, उन सबमें ही प्रायः शारीरिक परिश्रम होता है, परन्तु उनमें परिश्रमकी अधिकताको हानिकारक ध्यान नहीं दिया जाता, यह अच्छा नहीं है। क्योंकि जिस प्रकार शारीरिक परिश्रमके अभावसे शरीर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार अधिक परिश्रम

करनेसे भी शरीर नष्ट हो जाता है। जब शरीरमें शिथिलता आवे और कमजोरी मालूम हो, तब समझ लेना चाहिए कि परिश्रम बहुत किया गया है, और तब सावधानीसे काम लें।

आजकल बहुधा देखनेमें आता है कि धनवान लोग जितने अधिक रोगी रहते हैं, उतने सदा परिश्रम करनेवाले गरीब लोग नहीं रहते। इसका यही कारण है कि धनाढ्य लोग शारीरिक परिश्रम बहुत कम करते हैं। चाहे राजा हो और चाहे रंक, शारीरिक परिश्रम किये बिना किसीका भी शरीर नीरोग नहीं रह सकता। इसलिए धनवानोंको चाहिए कि हमेशा शारीरिक परिश्रम या व्यायाम (कसरत) करनेका ख्याल रखें। व्यायाम करनेसे प्रायः समस्त शरीरमें हलन-चलन क्रिया होती है, जिससे शरीर हृष्ट-पुष्ट बना रहता है। स्कूलके विद्यार्थियोंमें से कोई-कोई विद्यार्थी पढ़ने-लिखनेमें इतने लीन रहते हैं कि वे अपने शारीरिक परिश्रमके लिए कुछ भी समय खर्च नहीं करते, वे लोग पढ़नेके बाद जब गृहस्थावस्थामें प्रवेश करते हैं, तब इतने पतले-दुबले और कमजोर हो जाते हैं कि उनका जीवन भार-रूप हो जाता है। इसलिए हमें चाहिए कि हम बचपन ही से शारीरिक परिश्रम या कसरत करना सीखें। जो लड़के व्यायाम करके अपने शरीरको हृष्ट-पुष्ट बनाये रखते हैं, वे ही विद्या, धन, मान प्रतिष्ठा पाकर देशके भूषण होते हैं। और नहीं तो कम-से-कम रोज शाम-सवेरे दोनों वक्त साफ मैदान या बगीचेकी हवा खानेके लिए मील-दो-मील तो जरूर टहल लिया करें।

पैंतीसवाँ पाठ

आठ कर्म

[illegible]—गुरुजी, कर्म किसे कहते हैं?

गुरु—भाई, यह विषय कठिन है, परन्तु तुम्हें सरलतासे बताता हूँ। ध्यान देकर सुनो। यह तो तुम जानते ही हो कि जीव पाँच प्रकारके हैं—एक इन्द्रिय, दो-इन्द्रिय, तीन-इन्द्रिय, चार-इन्द्रिय और पाँच-इन्द्रिय। ये जीव हमेशा किसी-न-किसी गतिमें, किसी-न-किसी शरीरमें रहते हैं। बिना शरीरके संसारी जीव एक मिनट भी नहीं रह सकते। यह शरीर भी एक प्रकारका कर्म है। जीवके इस शरीरके साथ और भी अनेक कर्म, अनादि कालसे लगे हुए हैं। जब जिस-जिस शरीरमें यह जीव जाता है, कर्म उसके साथ लगे रहते हैं, और उसे नाना प्रकारके सुख दुःख देते हैं। ये कर्म आठ प्रकारके होते हैं।

शिष्य—इन आठ कर्मोंके नाम क्या हैं?

गुरु—(१) ज्ञानावरणीय, (२) दर्शनावरणीय, (३) मोहनीय, (४) अन्तराय, (५) वेदनीय, (६) आयु, (७) नाम और (८) गोत्र ये आठ कर्म हैं।

शिष्य—इनमें से ज्ञानावरणीय कर्म जीवको क्या दुःख देता है?

गुरु—जीवमें ज्ञान गुण विशेष भगवानके समान केवलज्ञान (सर्वज्ञता) तकका है, परन्तु इस ज्ञानावरणीय कर्मने समस्त ज्ञानको (बादलकी सूरजकी तरह) ढक रखा है। थोड़ा-बहुत ज्ञान-गुण प्रगट है, इसीसे अपने जीव जानने और पढ़ने-लिखने

रहते हैं। कोई पंडित होता है, कोई मूरख,—यह इसी ज्ञानावरणीय कर्मका फल है। जिसके ज्ञानावरणीय कर्म ज्यादा कम हो जाता है, उसके ज्ञान भी ज्यादा होता है। जिसके ज्ञानावरणीय कर्म कम नहीं होता, उसको ज्ञान थोड़ा होता है।

शिष्य—और दर्शनावरणीय कर्म किसको कहते हैं।

गुरु—जो कर्म इस जीवके देखनेके गुणको घात करता है, वह दर्शनावरणीय कर्म है। हम लोगोंको जो नींद आती है, सो दर्शनावरणीय कर्मके उदयसे ही आती है।

शिष्य—मोहनीय कर्म क्या करता है?

गुरु—मोहनीय कर्म इस जीवको अज्ञानी करता है और कुछ-का-कुछ विश्वास करा देता है। क्रोध, मान, माया, लोभ, आदि कषाय जो जीवके होते हैं, वे सब मोहनीय कर्मके कारण ही होते हैं।

शिष्य—अन्तराय कर्म क्या करता है?

गुरु—अन्तराय कर्म इस जीवके दान, लाभ, भोग, उपभोग और बल इन पाँचोंके होनेमें विघ्न डालता है अर्थात् दान नहीं होने देता। दान करता या लेता हो, तो उसमें अन्तराय डाल देता है। किसी भी लाभमें यह बाधा पहुंचा देता है।

शिष्य—और वेदनीय कर्म क्या करता है?

गुरु—वेदनीय कर्मसे इस जीवको अनेक प्रकारके सुख और दुःख मिलते हैं। जिससे सुख होता है, उसको सातावेदनीय कहते हैं, और जिससे दुःख होता है, उसे असातावेदनीय कहते हैं। इस प्रकार वेदनीय कर्मके दो भेद हैं।

शिष्य — आयु कर्मका क्या काम है ?

गुरु — आयु-कर्म जीवोंको शरीरमें रोक रखता है अर्थात् उमर देता है। जितने दिन या जितने वर्षकी आयु होगी, उतने ही दिन या उतने ही वर्ष तक यह जीव एक शरीरमें रह सकता है। जिस समय आयु-कर्म पूरा हो जाता है, उसी समय यह जीव इस शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरको धारण कर लेता है।

शिष्य — नाम कर्म किसको कहते हैं ?

गुरु — नाम कर्म शरीर, इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंकी मजबूती, सुन्दरता, असुन्दरता आदि देता है। नाम कर्मके ९३ भेद हैं, उनके फल भी जुदा-जुदा हैं।

शिष्य — और गोत्र कर्मका क्या काम है ?

गुरु — गोत्र कर्म इस जीवको ऊँचे और नीचे कुलमें पैदा होनेके लिए बाध्य या मजबूर करता है। अगर नीच गोत्र कर्मका उदय होता, तो भवन भंगी, चमार, कसाई वगैरह नीच जातिमें पैदा होते, परन्तु हमारे उच्च गोत्रका उदय होनेसे हमने उत्तम वैश्यकुलमें तथा उसमें भी ऊँचे श्रावककुलमें जन्म लिया।

शिष्य — इन कर्मोंके भेद भी बहुत हैं ?

गुरु — भेद तो अनेक हैं, परन्तु सब मिलाकर बड़े बड़े भेद १४८ हैं। ज्ञानावरणीय ५ प्रकारका, दर्शनावरणीय ९ प्रकारका, मोहनीय २८ प्रकारका, अन्तराय ५ प्रकारका, वेदनीय २ प्रकारका, आयुकर्म ४ प्रकारका, नामकर्म ९३ प्रकारका और गोत्रकर्म २ प्रकारका है। इस तरह सब मिलाकर १४८ भेद हुए। कर्मोंके सम्बन्धमें और भी बहुत सी बातें हैं, आगे बताई जायेंगी।

छत्तीसवाँ पाठ

समय-विभाजन

६० सेकेण्डका ... १ मिनट ६० मिनटका ... १ घंटा
२४ घंटेका ... १ दिन ७ दिनका - १ हफ्ता (सप्ताह)
४ हफ्ते ३० दिनका - १ महीना १२ महीनेका - १ वर्ष या साल
५२ हफ्तेका ... १ साल ३६५ दिनका ... १ साल

एक हफ्तेमें सात वार

१ रविवार (इतवार), २ सोमवार (चन्द्रवार), ३ मङ्गलवार, ४ बुधवार, ५ बृहस्पतिवार (गुरुवार), ६ शुक्रवार, ७ शनिवार।

एक वर्षमें बारह महीने

हिन्दी महीनोंके नाम	अंगरेजी महीनोंके नाम
१ चैत्र (चैत)	१ जनवरी
२ वैशाख (वैसाख)	२ फेब्रुअरी (फरवरी)
३ ज्येष्ठ (जेठ)	३ मार्च
४ आषाढ़ (असाढ़)	४ अप्रेल (एप्रिल)
५ श्रावण (सावन)	५ मई (मे)
६ भाद्रपद (भादों)	६ जून
७ आश्विन (कुआर)	७ जुलाई
८ कार्तिक (कातिक)	८ अगष्ट (अगस्त)
९ मार्गशीर्ष (अगहन)	९ सेप्टेम्बर (सितम्बर)
१० पौष (पूस)	१० अक्टोबर (अक्तूबर)
११ माघ (माह)	११ नवेम्बर (नवम्बर)
१२ फाल्गुन (फागुन)	१२ दिसेम्बर (दिसम्बर)

षट् ऋतु

दो-दो महीनेकी एक-एक ऋतु होती है। [illegible] षट् ऋतुएँ होती हैं—१ ग्रीष्म, २ वर्षा, ३ शरत्, ४ हेमन्त, ५ शीत और ६ वसन्त।

(१) ग्रीष्म-ऋतु [illegible] होती है, (२) वर्षा [illegible], (३) शरत् [illegible], (४) हेमन्त [illegible], (५) शीत [illegible] और (६) वसन्त-ऋतु [illegible] हुआ करती है।

तेंतीसवाँ पाठ

सत्संगति

[illegible]

[illegible]

जगमें होत हँसाय, चित्तमें चैन न पावे;
खान-पान, सन्मान, राग-रँग मनहिं न भावे।
कह 'गिरधर' कविराय, दुःख कछु टरत न टारे;
खटकत है जिय माहिं, करै जो बिना विचारे।

यह सुनकर एक कबूतर बोला—हुंः! इस बूढ़ेकी बातें कहाँ तक मानें!—और जो इसी प्रकार बात-बातमें सोचा करें, तो फिर खाना किस तरह मिले, और कैसे जीयें? यह सुनते ही सब-के-सब कबूतर नीचे उतर पड़े। तब चित्रग्रीवने सोचा कि जो होना है, सो होगा; पर अब इनका साथ छोड़ना ठीक नहीं। इस प्रकार सोच-समझकर वह भी सबके साथ नीचे उतरा। नीचे उतरते ही सब-के-सब जालमें फँस गये और जिसके कहनेसे नीचे उतरे थे, उस कबूतरको बुरा-भला कहने लगे।

चित्रग्रीवने कहा—इसमें इसका कुछ भी दोष नहीं। जब विपत्तिके दिन आते हैं, तब मित्र भी वैरी हो जाते हैं। इसलिए अब धीरज धरके इस जालसे छूटनेकी कोशिश करो; क्योंकि नीतिमें कहा है—

बीती ताहि बिसार दे, आगेकी सुधि लेहु;
जो बनि आवे सहजमें, ताहीमें चित देहु।
ताहीमें चित देहु, बात जोई बनि आवे;
दुर्जन हँसे न कोय, चित्तमें खेद न पावे।
कह 'गिरधर' कविराय, यहै कर मन परतीती;
आगेको सुख होय, समुझ बीती सो बीती।

[illegible] [illegible] [illegible] [

उनचालीसवाँ पाठ

चार गति

हम और तुम, संसारके सभी जीव, अपने ही द्वारा उपार्जित कर्मोंके फलसे संसारकी चारों गतियोंमें जन्म-मरण करते हुए नाना प्रकारके दुःख भोगते रहते हैं। इसलिए उन गतियोंका स्वरूप सबको अवश्य जानना चाहिए। गतियाँ चार होती हैं (१) मनुष्य-गति, (२) तिर्यंच-गति, (३) देव-गति और (४) नरक-गति।

(१) मनुष्य-गति:—'तत्त्वार्थ सूत्र' में लिखा है, "अल्पारम्भ परिग्रहत्वं मानुषस्य" अर्थात थोड़ा आरम्भ और थोड़ा परिग्रह रखनेसे मनुष्य-गति होती है। चारों गतियोंमें यही सर्वश्रेष्ठ यानी सबसे अच्छी गति है, क्योंकि इसी गतिसे आत्माको मुक्ति (मोक्ष) मिलती है। इसी गतिमें तीर्थंकर उत्पन्न होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। इसलिए हम सबको चाहिए कि हमेशा थोड़ा आरम्भ (सांसारिक कामोंका पाप) और थोड़ा परिग्रह (चीजोंमें ममता) रखें, जिससे हम फिर मनुष्य हो सकें।

(२) तिर्यंच-गति:— झूठ, छल-कपट मायाचारी आदि करनेसे तिर्यंच-गतिमें जाना पड़ता है; अर्थात् हाथी, घोड़ा, गाय, भैंस, गधा, सांप, बिच्छू, चिड़िया, भौंरा, चींटी, केंचुआ, कीड़े-मकोड़े वगैरहका शरीर धारण करना पड़ता है। तिर्यंच-गतिमें बड़ा कष्ट है। भूख-प्यास, गर्मी, जाड़ा, वध, बन्धन, मार खाना, गाड़ी खींचना आदि अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं, इसलिए हमें छल-कपट न करना चाहिए।

और इस पृथ्वीके नीचे क्रमशः इस प्रकार मौजूद हैं—१ रत्नप्रभा (घम्मा), २ शर्कराप्रभा (वंशा), ३ वालुकाप्रभा (मेघा), ४ पंकप्रभा (अंजना), ५ धूमप्रभा (अरिष्टा), ६ तमःप्रभा (मघवी) और ७ महातमःप्रभा (माघवी)।

इन नरकोंमें—पहलेसे दूसरेमें, दूसरेकी अपेक्षा तीसरे आदिमें अधिक-अधिक दुःख और आयु अधिक-अधिक होती है।

इन चारों गतियोंमें—मनुष्य-गतिके सिवा अन्य गतियोंमें चरित्र धारण नहीं बनता। इसलिए मनुष्य-भवको पाकर, धर्म-शास्त्र आदि पढ़कर धर्म सेवन करके, जितना भी बन सके, अपने आत्माकी भलाई करनी चाहिए।

—

चालीसवाँ पाठ

अभिषेक-पाठ या 'मंगल'

पणविवि पंच परमगुरु, गुरु जिन-सासनो ;
सकल सिद्धि-दातार सु, विघन विनासनो।
सारद अरु गुरु गौतम, सुमति प्रकासनो ;
मंगलकर चउ-संघहिं, पाप-पणासनो।१

पापहिं पणासन गुणहिं गरुवा, दोष अष्टादश रहिउ ;
धरि ध्यान करम विनासि, केवलज्ञान अविचल जिन लहिउ।
प्रभु पंच-कल्याणक विराजित, सकल सुर-नर ध्यावहीं ;
त्रैलोकनाथ सु-देव जिनवर, जगत मंगल गावहीं।२

भासियो फल तिहिं चिन्ति दम्पति, परम आनंदित भये ;
छह मास परि नव मास पुनि तहँ, रैन-दिन सुखसों गये।
गर्भावतार महन्त महिमा, सुनत सब सुख पावहीं ;
भणि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं।८

(२) जन्म-कल्याणक

मति-श्रुत-अवधि विराजित, जिन जब जनमियो ;
तिहुं लोक भयो छोभित, सुरगण भरमियो।
कल्पवासि घर घंट, अनाहद बजियो ;
जोतिष घर हरि-नाद, सहज गल गजियो।९

गजियो सहजहिं संख 'भावन' 'भुवन' सबद सुहावने ;
विन्तर-निलय पटु पटह बजहिं, कहत महिमा क्यों बने।
कम्पित सुरासन, अवधि-बल, जिन-जनम निहचै जानियो ;
धनराज तब गजराज मायामयी निरमय आनियो।१०

जोजन लाख गयन्द, बदन सौ निरमये ;
बदन-बदन वसु दन्त, - दन्त सर संठये।
सर-सर सौ - पणवीस, कमलिनी छाजहीं ;
कमलिनि-कमलिनि कमल, पचीस विराजहीं।११

राजहीं कमलिनि कमल-कोनर, सौ मनोहर दल बने ;
दल-दलहिं अपछर नटहिं नवरस, हाव-भाव सुहावने।
मणि कनक-किंकणि वर विचित्र, सु अमर मंडप सोहये ;
धन घंट चमर धुजा पताका, देखि त्रिभुवन मोहये।१२

[illegible] [illegible] [illegible] [

बाजने बाजहिं सचीं सब मिलि, धवल-मंगल गावहीं ।
पुनि करहिं नृत्य सुरांगना सब, देव कौतुक धावहीं ।
भरि छीर-सागर जल जु हाथहिं,-हाथ सुर गिरि ल्यावहीं ।
सौधर्म अरु ईसान इन्द्र सु, कलस ले प्रभु न्हावहीं ।१

बदन उदर-अवगाह, कलस-गत जानिये ;
एक चार बसु जोजन, मान प्रमानिये ।
सहस अठोतर कलसा, प्रभुके सिर ढरे ;
पुनि सिंगार प्रमुख आचार सबै करे ।१६

करि प्रगट प्रभु महिमा-महोच्छव, आनि पुनि मातहिं दये ।
धनपतिहिं सेवा राखि सुरपति, आप सुरलोकहिं गये ।
जनमाभिषेक महन्त महिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर, जगत-मंगल गावहीं ।२

मंगल-गीत

मैं मति-हीन भगति-बस, भावन भाइया ;
'मंगल-गीत प्रबन्ध' सु, जिन-गुण गाइया ।
जो नर सुनहिं, बखानहिं सुर धरि गावहीं ;
मनवांछित फल सो नर, निहचें पावहीं ।

पावहीं आठों सिद्धि नव निधि, मन प्रतीत जो लावहीं ;
भ्रम-भाव छूटें सकल मनके, 'निज' स्वरूप लखावहीं ।
पुनि हरहिं पातक, टरहिं विघन, सु होहिं मंगल नित नये ;
भणि 'रूपचन्द' त्रिलोकपति, जिनदेव चउ संघहिं गये ।

इकतालीसवाँ पाठ

मेंढकेे दोस्त चूहे

एक मेंढकेे दोस्त चूहे थे, पर वे बड़े दुष्ट थे। एक बार वे मेंढक तालाबके आसपासकी सड़कें खराब थे। उनका दिल उन्हें दुःखीको बहुत सताया करता, पर वे एक भी दुःखी थे। अब एकका किया सामने आया, तब दोनों चूहोंको पुलिसने पकड़ लिया। उन्हें दुःखी (जोड़ी) का और कड़ा कारावास दिया गया। इस तरह उन्हें अपने बुरे कामोंका फल मिला। अनेक लोगोंने उन्हें दुःखी देखकर खुशी मनाई। एक बार वह किसीसे भी बड़ा दुष्ट था। अब किसीसे कहा देखो, करनी सुखकर तथा किसका कल्याण होता है, पर बहुधा इस विषयमें बड़ी कठिनाई हो जाती है। इसी कारण यदि मुझे कोई बुरे बुरे स्वप्न आया करें, तो मुझे दो-चार दिन भूखा रहना, और कोई मुझ चोरों आदि विषयक बातें सुनाए और अच्छे पुरुषोंके मुखसे उनकी प्रशंसा सुनूँ। इससे मेरे मनमें बुरी कल्पनाएँ न आने पावेंगी। मेरे इस मुहावरा कुछ ऐसे कठिन थे। इसी लिए उन्हें मुझे बड़ा कष्ट हुआ। और लिखनेमें कुछ भूल हो गई हो तो उसे सुधार लेने की कृपा करें।

[illegible]

बयालीसवाँ पाठ

कौन, क्या और क्यों ?

शिष्य—गुरुजी, वास्तवमें पंडित कौन है ?

गुरु—जो विवेकी हो, अर्थात् स्वयं विचार-पूर्वक मार्गसे चले और दूसरोंको भी सुमार्गमें चलावे।

शिष्य—मूर्ख कौन है ?

गुरु—जो खुद तो जाने नहीं और ज्ञानीकी माने नहीं।

शिष्य—शूर-वीर कौन है ?

गुरु—जिसने क्रोध, मान, माया, लोभ और इन्द्रियोंको जीत लिया हो।

शिष्य—कायर कौन है ?

गुरु—जो मन और इन्द्रियोंको वश नहीं कर सकता।

शिष्य—किस मनुष्यका जन्म सफल है ?

गुरु—जो संसारमें धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थोंका शक्ति-भर पालन करता हुआ सच्चा सुख और स्थायी शान्ति पानेके लिए मोक्ष-पुरुषार्थकी साधना करता है।

शिष्य—जगतमें धन्य कौन है ?

गुरु—जो अनन्त शक्तिशाली अपनी आत्माको पहचानकर, संसारकी अन्य तमाम चीजोंसे मोह-ममता न रखता हुआ, अहिंसा-सत्य आदिका पालन करता है।

शिष्य—धिक्कारने-योग्य कौन है ?

गुरु—जो धर्म-पालनकी प्रतिज्ञा करके भंग कर दे।

शिष्य—मित्र कौन है ?

शिष्य—टोंटा (बिना हाथका) कौन है ?

गुरु—जिसने औषध, शास्त्र, अभय और आहार इन चार दानोंमें से एक भी दान न किया हो।

शिष्य—इस दुःखपूर्ण संसारमें शरण कौन है ?

गुरु—सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु।

शिष्य—जल्दी क्या करना चाहिए ?

गुरु—धर्म अर्थात् कर्मोंसे मुक्त या स्वाधीन होनेका प्रयत्न।

शिष्य—नित्य क्या विचारना चाहिए ?

गुरु—संसारकी क्षण-भंगुरता और आठ कर्मोंसे जकड़ी हुई अपनी पराधीन आत्माका स्वरूप।

शिष्य—सबसे उत्तम धन कौन-सा है ?

गुरु—विद्या, अर्थात् सच्चा ज्ञान।

शिष्य—उपादेय (सीखने या ग्रहण करने-लायक) क्या है ?

गुरु—आत्मा और जड़ वस्तुओंमें ज्यों-का-त्यों सत्य और पूर्ण विश्वास, सच्चा ज्ञान और सच्चा आचरण।

शिष्य—हेय (छोड़ने लायक) क्या है ?

गुरु—मिथ्या विश्वास, असत्य ज्ञान और असद् आचरण।

शिष्य—विष क्या है ?

गुरु—भोग-विलास और बुरी संगत।

शिष्य—इस संसारमें सार क्या है ?

गुरु—मनुष्य जन्म पाकर तत्त्वदर्शी विद्वान् होकर निज-पर (आत्मा और जड़ पदार्थ) को समझकर प्राणी मात्रके हितमें दृढ़ श्रद्धा रखना।

तेतालीसवाँ पाठ

जीवकी नौ पहचान और दस प्राण

बारहवें पाठमें जीव किसे कहते हैं इत्यादि मामूली बताया जा चुका है। अब जीवके विशेष स्वरूप, खास-खास पहचान और उसके दस प्राणोंका वर्णन किया जाता है। 'द्रव्य-संग्रह' की एक गाथा है—

"जीवो उवओगमओ, अमुत्ति, कत्ता, सदेहपरिमाणो ;
भोत्ता, संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ।२।"

अर्थात्—जीव सो जीव है, उपयोगमय (ज्ञानमय) है, अमूर्ति है, स्वयं कर्मोंका कर्ता है, अपनी देहके बराबर (छोटा या बड़ा) रहता है और अपने उपार्जित कर्मोंको भोगता है, संसारी है, सिद्ध है और स्वभावसे ही ऊर्ध्व गमन करनेवाला है। अर्थात् ये नौ प्रकार या नौ पहचानें जिसमें पाई जायँ, वही जीव है।

जीवकी नौ पहचान :----(१) वास्तवमें जीव—आदि,मध्य और अन्त-रहित—शुद्ध चैतन्य या ज्ञानमय है, यानी ज्ञान चैतन्यको ही 'जीव' कहते हैं।

(२) जीवके ज्ञान और दर्शन—ये दो उपयोग (चेतनाकी परिणति) हैं, इसलिए वह 'उपयोगमय' है।

(३) यद्यपि जीव, कर्मी-कर्मोंसे पानी और दूधकी तरह—एकमेक हो रहा है, परन्तु वास्तवमें रूप-रहित 'अमूर्तिक' है।

(४) वास्तवमें (निश्चयनयसे) यद्यपि जीव क्रिया-रहित शुद्ध

तीन-बल :—(१) काय-बल, (२) वचन-बल, (३) मनोबल।

(६) काय-बल :—शरीर या देहकी शक्ति।

(७) वचन-बल :—मनके भावको व्यक्त करनेकी शक्ति। बातचीत करनेकी ताकत।

(८) मनोबल :—जिससे जीव शिक्षा ग्रहण करता हो, तर्क-वितर्क या संकेत आदि समझता हो और कार्य-कारण आदिका विचार करता हो, उसे 'मन' कहते हैं। इसके दो भेद हैं—(१) द्रव्य-मन और (२) भाव-मन। रक्त-मांसादिका बना हुआ हृदय 'द्रव्य-मन' है और ज्ञानावरण-वीर्यान्तराय (कर्म) के क्षयोपशमसे मन द्वारा जाननेकी शक्ति 'भाव-मन' है।

(९) आयु :—आयु-कर्मके अनुसार जीवोंका मौजूदा देहमें रुका रहना। अर्थात् उम्र।

(१०) श्वासोच्छ्वास :—साँस और उसास। इसको 'पान-अपान' भी कहते हैं।

विशेष :—इनमें से एकेन्द्रिय जीवके शुरूके ४ प्राण होते हैं—(१) स्पर्शन-इन्द्रिय, (२) काय-बल, (३) आयु और (४) श्वासोच्छ्वास। दो-इन्द्रिय जीवके रसना-इन्द्रिय और वचन-बल मिलकर ६ प्राण होते हैं। इसी तरह ते-इन्द्रिय जीवके घ्राण-इन्द्रिय बढ़कर ७ प्राण होते हैं, चौ-इन्द्रिय जीवके चक्षु-इन्द्रिय बढ़कर ८ प्राण होते हैं, पंचेन्द्रिय जीवके श्रोत्रेन्द्रिय बढ़कर ९ और सैनी पंचेन्द्रिय जीवके मन बढ़कर १० प्राण होते हैं।

(१) सैनी जीव—वे हैं, जिनके मन हो। पंचेन्द्रिय जीव ही सैनी या संज्ञी हो सकते हैं। जैसे—आदमी, हाथी, घोड़ा, गाय आदि इस पृथ्वीके जीव तथा स्वर्गके देव और नरकके नारकी।

(२) असैनी जीव—वे हैं, जिनके मन न हो। एकेन्द्रियसे लेकर चौ-इन्द्रिय तक सब जीव असैनी होते हैं। सिर्फ पानीमें रहनेवाले कोई-कोई साँप और बाज-बाज तोता भी असैनी या असंज्ञी होता है।

पंचेन्द्रियसे नीचेके जीव, सब असैनी ही होते हैं; क्योंकि 'मन' पंचेन्द्रिय जीवके सिवा और किसीके हो नहीं सकता।

स्थावर जीव :----'स्थावर जीव' एकेन्द्रिय जीवोंको कहते हैं। ये पाँच प्रकारके होते हैं—(१) पृथ्वी-कायिक, (२) जल-कायिक, (३) अग्नि-कायिक, (४) वायु-कायिक और (५) वनस्पति-कायिक।

(१) पृथ्वी-कायिक :—पृथ्वी ही है काय जिसकी; यानी जिस जीवकी पृथ्वी (धरती) ही देह है, वह 'पृथ्वी-कायिक जीव' है। जैसे—धरतीकी मिट्टी, पहाड़, खानमें सोना-चाँदी आदि धातुएँ।

(२) जल-कायिक :—जल ही है काया या देह जिसकी, वह 'जल-कायिक जीव' है। जैसे—पानी, ओस, ओला आदि।

(३) अग्नि-कायिक :—आग ही है देह जिसकी, वह 'अग्नि-कायिक जीव' है। जैसे—आग या अंगार।

(४) वायु-कायिक :—वायु या हवा ही है देह जिसकी, वह 'वायु कायिक जीव' है। जैसे—हवा।

जिसके उदयसे आत्माको सम्यक्त्व न हो और स्वरूपाचरण चारित्र न हो सके, उसे 'अनन्तानुबन्धी कषाय' कहते हैं। इसी तरह जो अणुव्रत न होने दे, सो 'अप्रत्याख्यानावरण कषाय' है। जो महाव्रत न होने दे, सो 'प्रत्याख्यानावरण कषाय' है; और जिससे यथाख्यात-चारित्र (कषायोंके अभावसे पैदा हुई आत्मा की शुद्धि-विशेष) न हो सके, उसे 'संज्वलन कषाय' कहते हैं।

मतलब यह कि आत्माको सबसे ज्यादा हानि पहुंचानेवाली और पत्थरकी लकीरकी तरह मुश्किलसे मिटनेवाली कषायको 'अनन्तानुबन्धी कषाय' कहते हैं। उससे कम ताकत रखनेवाली, कम देर तक रहनेवाली और आत्माको कम नुकसान करनेवाली कषायको 'अप्रत्याख्यानावरण कषाय' कहते हैं। इसी तरह—उससे कम शक्तिशाली कषायको 'प्रत्याख्यानावरण कषाय' कहते हैं, और नाम-मात्र कषाय रहनेको 'संज्वलन कषाय' कहते हैं।

[इनका समझना भी जरा कठिन है, इसलिए इसे तीसरे भागमें समझना]

प्रमाद:—कषायोंके तीव्र उदयसे, यानी काफी तौरसे क्रोध-मान-माया-लोभ मौजूद रहनेसे जीवको जो अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि व्रत या चारित्र पालन करनेका उत्साह नहीं होता, जो इनमें बाधा या अड़चन डालता है, सो 'प्रमाद' है।

धर्म-शास्त्र पढ़नेमें आलस करना भी प्रमाद है, इसलिए इसकी पुस्तक पढ़नेमें कभी आलस न करना चाहिए।

कविताओंमें आये हुए कठिन एवं पारिभाषिक शब्दोंके अर्थ और अभिप्राय

आस्रव--आत्मामें कर्मोंके आनेका द्वार। मन, वचन और काय इन तीन योगोंके हलन-चलन से कर्मोंका आस्रव होता है।

इष्ट—इच्छित, जिसकी चाह हो।

'उछंग'—गोद।

उतंग—ऊँचा।

उतारन—पार करनेको।

उपसमै—शान्त हो जायँ।

उर—हृदय, मन।

एकांत—एकांतवाद—मिथ्यात्व, मिथ्या धर्म; जिस सिद्धान्तमें स्याद्वाद, अपेक्षावाद या नय-प्रमाणोंसे जीव-अजीव पदार्थों का विचार न किया गया हो।

एव—ही, निश्चित रूपसे।

कन—अन्न, अनाजका दाना।

कमलऽठोतर सौ—कमल आठ ज्यादा सौ। १०८ कमल।

'कमलिनी'—कमलोंकी माला।

करि—हाथी।

कलित—धारण किये हुए, समेत।

कल्लोल—लहर। कल्लोल-माला—सिलसिलेवार बहुत-सी लहरें।

कल्लोल-मालाऽकुलित सागर—लहरोंसे चंचल समुद्र।

काललब्धि—आत्माके लिए कल्याणकारी किसी शुभ कार्यके होनेके समयकी प्राप्ति।

कुंजर—हाथी।

केशर—सिंहके गरदनके बाल।

गगन उलँघि गये—सहस निन्यानवे गगन उलँघि गये—मेरु-पर्वत एक लाख योजन ऊँचा है, जिसमें १ हजार योजन जमीनके नीचे है—बाकी ९९ हजार ऊँचे चढ़े।

गयन्द—हाथी।

गल—बड़ा बाजा।

गिण्या—माना, समझा।

गुणहिं गरुआ—गुणोंमें भारी या महान।

'गुप्त'—जापा, प्रसूति-स्थान।

गुरु—बड़े भारी, महान।

चउ-संघ—मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविका इन चारोंका समूह।

चउ-संघहि गये (चहु संघहि जये)—चारों संघ [illegible] हैं या जय-जयकार [illegible]

चिन्तामणि—वह रत्न [illegible] मनचाही चीज मि[illegible]

चौहटें—चारों तरफ [illegible] जगहमें।

आस्रव--आत्मामें कर्मोंके आनेका द्वार। मन, वचन और काय इन तीन योगोंके हलन-चलन से कर्मोंका आस्रव होता है।

इष्ट—इच्छित, जिसकी चाह हो।

'उछंग'—गोद।

उतंग—ऊँचा।

उतारन—पार करनेको।

उपसमै—शान्त हो जायँ।

उर—हृदय, मन।

एकांत—एकांतवाद—मिथ्यात्व, मिथ्या धर्म; जिस सिद्धान्तमें स्याद्वाद, अपेक्षावाद या नय-प्रमाणोंसे जीव-अजीव पदार्थों का विचार न किया गया हो।

एव—ही, निश्चित रूपसे।

कन—अन्न, अनाजका दाना।

कमलऽठोतर सौ--कमल आठ ज्यादा सौ। १०८ कमल।

'कमलिनी'—कमलोंकी माला।

करि—हाथी।

कलित—धारण किये हुए, समेत।

कल्लोल--लहर। कल्लोल-माला—सिलसिलेवार बहुत-सी लहरें।

कल्लोल-मालाऽकुलित सागर—लहरोंसे चंचल समुद्र।

काललब्धि—आत्माके लिए कल्याणकारी किसी शुभ कार्यके होनेके समयकी प्राप्ति।

कुंजर—हाथी।

केशर—सिंहके गरदनके बाल।

गगन उलँघि गये—सहस निन्यानवे गगन उलँघि गये—मेरु-पर्वत एक लाख योजन ऊँचा है, जिसमें १ हजार योजन जमीनके नीचे है—बाकी ९९ हजार ऊँचे चढ़े।

गयन्द—हाथी।

गल—बड़ा बाजा।

गिण्या—माना, समझा।

गुणहि गरुआ—गुणोंमें भारी या महान।

'गुप्त'—जापा, प्रसूति-स्थान।

गुरु—बड़े भारी, महान।

चउ-संघ—मुनि, अर्जिका, श्रावक श्राविका इन चारोंका समूह

चउ-संघहि गये (चहु संघ जये)—चारों संघ गुण गा हैं या जय-जयकार करते हैं

चिन्तामणि—वह रत्न जिस मनचाही चीज मिले।

चौहटें—चारों तरफसे खुली जगहमें।

दर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्यसे सुशोभित ।
दुख-गद—दुःख-रूपी रोग ।
दुख-निकन्द—दुःख हरनेवाले ।
दुगुनायाम—दूने नापकी ।
देई—देती ।
द्वन्द्व—दुविधा । बखेड़ा ।
धुनि—दिव्य-ध्वनि, जिनवाणी ।
नटहिं—नृत्य करती हैं ।
नयरि—नगरी ।
नव - केवल - लब्धि— अरहन्त भगवानके अनन्त ज्ञान-दर्शन आदि नौ तरहके क्षायिक भावोंकी प्राप्ति ।
निज—आत्मा । आत्म-संबंधी ।
निज-अनुभूति-हेत— आत्मा की अनुभूतिमें कारण, आत्माकी पहचान करानेमें सहायक ।
निज-पर-विवेक—आत्मा और जड़ पदार्थोंकी वास्तविकता और भिन्नताका सच्चा ज्ञान ।
निजाधीन—आत्मामें लीन ।
निजानन्द—आत्मिक सुख ।
निमित्त-कारण—किसी कामके होनेमें हेतु-रूप सहायक ।
निर्जरा—आत्मासे कर्मोंका थोड़े अंशोंमें अलग होना ।
निरमय—निरमाकर, निर्माण करके, बनाकर ।
पंच-कल्याणक—तीर्थंकर भगवानके गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्षके समय होनेवाले महोत्सव ।
पगार—कोटकी दीवार ।
पच्छिम—पूर्वसे उलटा पच्छिम यानी पहलेसे उलटा पीछे ।
रयन—रात ।
पणविवि—प्रणाम करता हूँ ।
पयोनिधि—क्षीरसागर ।
पर—आत्माके सिवा या उससे अलग संसारकी और सब चीजें ।
परवान—प्रमाणसे जानकर । अवधि-ज्ञान-परवान—अवधि-ज्ञानसे जानकर ।
परिखा—खाई ।
पातक-पीर—पापजन्य दुःख ।
पावन—पवित्र, शुद्ध ।
पावनी—शुभ, शुद्ध । (स्त्री०)
पावस-काल—बरसातके दिन ।
पियूष—अमृत, दवा ।
पीठ, पीठिका—पीढ़ी, बैठनेका आधार, वेदी ।
पूजिये (पूजना, पूरा होना) पूरन किये ।

ಸೆಳೆ ಪ್ರಾಣಿ ದೇಹದ ಮೃದು ಭಾಗ;
ಸೆಳೆಯಿ ಸೆಳೆಯಿಸು, ಸೆಳೆಯಿಸಿ;
ಪ್ರಾಣಿಯಾಗಿ ಮನುಷ್ಯರಂತೆ ಮಾತನಾಡುವ ಪಾತ್ರ;
ಸೆಳ್ಳು ಎಳ್ಳಿನ ಗಿಡದ ಕಾಯಿಯಲ್ಲಿರುವ ಎಳ್ಳು;
ಸೆಳ್ಳೆ ಸೆಳ್ಳು;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆ ಸೆಳ್ಳಿನಿಂದ ತೆಗೆದ ಎಣ್ಣೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯನ್ನು ತೆಗೆದ ಮೇಲೆ ಉಳಿಯುವ ಪದಾರ್ಥ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲು ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯನ್ನು ಕಲಸಿ ತೆಗೆದ ಹಾಲು;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಕಡುಬು ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಕಡುಬು;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಪಾಯಸ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಪಾಯಸ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;
ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನ ಹೋಳಿಗೆ ಸೆಳ್ಳೆಣ್ಣೆಯ ಹಿಂಡಿಯ ಹಾಲಿನಿಂದ ಮಾಡಿದ ಹೋಳಿಗೆ;

विधि-फल—कर्मोंका फल।
विभाव—आत्माके कर्म-जनित शुभ-अशुभ भाव।
विषय-कषाय—पाँचोंके इन्द्रियों के विषय तथा क्रोध-मान-माया और लोभ कषाय।
वीतराग-विज्ञान—राग-द्वेषरहित शुद्ध आत्म-ज्ञान।
वीतरागी—जिनके राग-द्वेष बीत चुके हों। 'राग' शब्दमें 'द्वेष' भी शामिल रहता है।
शारद—सरस्वती, जिनवाणी।
शिव—मुक्ति, मोक्ष।
शिवनाथ—मोक्षके स्वामी।
श्रद्धान—श्रद्धा, सच्चा विश्वास।
श्रावक—आंशिक रूपसे या कुछ अंशोंमें अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह व्रत पालनेवाला सद्गृहस्थ।
संटये—बनाये।
संवर—आत्मामें कर्मोंका आना रुक जाना।
सम्यग्दर्शन—जीव और अजीव आदि संसारकी सभी चीजों के यथार्थ स्वरूपपर श्रद्धा या सच्चा और अटल विश्वास।
सरवस—सर्वस्व।
सरहि—सिद्ध या सफल होते हैं।
'सहज-गल'—'सहस गल' होगा।
सारिखी—समान।
सिंह-पीठ—सिंहासन।
सीरी—ठंडी।
सुचतुष्टय-मय—अनन्त चतुष्टय-सहित। अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनंत वीर्य या बल, इन्हें अनन्त-चतुष्टय कहते हैं।
सुधि—होश, ज्ञान।
सुर—स्वर्ग। सुर-वास—स्वर्ग का रहना या देवता होना।
सुलभकर—आसानीसे मिलने-वाले।
सेती—से, कारणसे।
सेस सक्र—बाकीके इन्द्र।
सौ-पर-बीस—सौ-पाँच-बीस, एक सौ पचीस।
स्वपद-सार—सार-रूप अपना यानी अपनी आत्माका पद।
स्वाति-बिन्दु—स्वाति-नक्षत्रमें बरसनेवाली बूंद।
हरन-सूर—दूर करनेको सूरज।
हरि-नाद—सिंह-नाद।